राजा प्रियंकर चरित्र

उपधान महातपाराधना प्रसंगे

पोष दशमी
आराधना एवं

गुरु सप्तमी
आराधना प्रसंगे

स्नेह भरा निमंत्रण

सम्पादक

प.पू. मुनिराज श्री जयानंद विजयजी म.सा.

आयोजक

श्रीमती भागवन्तीदेवी भंवरलालजी संघवी

आलासण - जिला - जालोर -343001 (राज.)

फोन नं. 02973-260173

।। श्री पार्श्वनाथाय नमः ।। ।। श्री चमत्कारी पार्श्वनाथाय नमः ।। ।। श्री गौतम गणधराय नमः ।।

श्री राजेंद्र - धनचन्द्र - भूपेन्द्र - यतीन्द्र - विद्याचन्द्रसूरि सद्गुरुभ्यो नमः

श्री राज-धन-तीर्थेन्द्र-लब्धिचन्द्रसूरि सद्गुरुभ्यो नमः

नमामि गुरु राम चन्द्रम् ।।

मंगलमय आशिष :	मंगलमय आशिष :
राष्ट्रसंत शिरोमणि वर्तमान	राष्ट्रसंत सुविशाल गच्छाधिपति
गच्छाधिपति आचार्य देवेश	आचार्य देवेश श्रीमद् विजय
श्रीमद् विजय हेमेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.	जयन्तसेन सूरीश्वरजी म.सा.

परम पावन निश्रा

प.पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय विद्याचंद्र सूरीश्वरजी म.सा.के
शिष्य एवं मुनिराज श्री रामचंद्र विजयजी म.सा. के कृपापात्र

मुनिराज श्री जयानंद विजयजी म.सा.

मुनि. श्री दिव्यानंद विजयजी म.सा.
मुनि. श्री वैराग्यानंद विजयजी म.सा.
मुनि. श्री तत्त्वानंद विजयजी म.सा.
मुनि. श्री रैवतचंद्र विजयजी म.सा.
मुनि. श्री अमृत विजयजी म.सा.
मुनि. श्री विज्ञान विजयजी म.सा. आदि ठाणा

।। श्रमणीवृंद ।।

।। अमर-विद्या-मान-मनोहर- भाव- हेत-ललित- मुक्ति गुरुभ्यो नमः।।
प. पू. राष्ट्रसंत शिरोमणी आचार्यदेव श्रीमद् विजय हेमेन्द्र सूरीश्वरजी म.सा.
की आज्ञानुवर्तिनी

शासन दीपिका प्रवर्तीनी गच्छशिरोमणी
गुरुवर्या श्री मुक्तिश्रीजी म.सा. की
सुशिष्याएँ

पू.सा. श्री कुशल प्रभाश्रीजी
पू.सा. श्री वसंतबालाश्रीजी
पू.सा. श्री मुक्तिप्रज्ञाश्रीजी
पू.सा. श्री मुक्तिरत्नाश्रीजी
पू.सा. श्री मुक्तिदर्शिताश्रीजी
पू.सा. श्री मुक्तिरिद्धिश्रीजी
पू.सा. श्री मुक्तिसिद्धिश्रीजी
पू.सा. श्री मुक्तिप्रियाश्रीजी आदि ठाणा

प.पू. महत्तरिका गुरुवर्या
स्व. ललितश्रीजी म.सा. की सुशिष्या प.पू.
सेवाभावी संघवणश्रीजी म.सा. की सुशिष्याएँ

पू.सा. श्री तत्त्वदर्शनाश्रीजी
पू.सा. श्री सौम्यदर्शिताश्रीजी
पू.सा. सौम्यरत्नाश्रीजी
पू.सा. श्री कैवल्यप्रियाश्रीजी
पू.सा. श्री संवरवर्षिताश्रीजी
पू.सा. श्री तत्त्वरुचिश्रीजी
पू.सा. श्री तत्त्वश्रद्धाश्रीजी
पू.सा. श्री तत्त्वश्रेयाश्रीजी

।। श्री ।।

।। श्री चमत्कारी पार्श्वनाथाय नमः ।। ।। श्री राजेन्द्र सुरी गुरुभ्यो नमः ।।

भाव भरा आमंत्रण

सेवा में सहर्ष निवेदन है कि हमारे परिवार कि भावना उपधान महातपाराधना करवाने की वर्षों से थी । उस भावना की परीपूर्णता अब हो रही है । इसका हमारे परिवार को असीम आनंद है ।

आप श्री सकल संघ से सादर सविनय सोउल्लास आग्रह भरी विनंती है कि आप सपरिवार पधारकर उपधान महातपाराधना में आराधक बनकर हमारे परिवार के उत्साह में अभिवृद्धि करावें ।

साथ में पोष दशमी के अट्ठम, तीन एकासणा करवाने का आयोजन है सो उसमें भी लाभ देने की कृपा करावें । पोह सुदी ७ को गुरु सप्तमी के मेले का आदेश भी हमारे परिवार को मिला है । एतदर्थ हम ट्रस्ट मंडल के आभारी है । इस मेले पर भी आप सपरिवार पधारकर हमे साधर्मिक भक्ति का लाभ देने की कृपा करावे ।

- ❋ पोषध के उपकरण आयोजक की और से दिये जायेगें ।
- ❋ फार्म भरकर शीघ्र भेजने की कृपा करावे ।
- ❋ तीनो उपधान वालो को प्रवेश दिया जायगा ।

ACHARYA SHRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SHRI MAHAVI... ...ENDRA
Koba Gand... ...07
Phone : (079) 23276252, 23276204-05

गुरु भगवन्तों का मंगल प्रवेश
मगसर वदि ७ वार सोमवार
ता. 9.11.2009

प्रथम मुर्हूत
संवत् 2066 रा मगसर वद १०
ता. 11.11.2009 बुधवार

द्वितीय मुर्हूत
संवत् 2066 मगसर वद १२
ता. 13.11.2009 शुक्रवार

पोष दशमी अट्ठम
ता. 10.12.2009
से 12.12.2009 तक

गुरु सप्तमी मेला
2066 रा पोह सुदी ७
ता. 24.12.2009

भव्य वरघोड़ा
पोष सुदि १० रविवार
ता. 27.12.2009

मोक्ष माला
पोष सुदी 11 सोमवार ता. 28.12.2009

शुभ स्थल

श्री चमत्कारी पार्श्वनाथ मन्दिर
श्री तीर्थेन्द्र सूरी स्मारक संघ ट्रस्ट
तीर्थेन्द्र नगर, बाकरा रोड - 343025
फोन नं. 02973 - 251144

निवेदक

शा. भंवरलाल मांगीलाल हरकचन्दजी
श्री श्री श्रीमाल संघवी, आलासण
जिला-जालोर (राज.)
फोन नं. 02973 - 260173

उवस्सग्गहरं-स्तोत्र-प्रभावित

राजा प्रियङ्कर

लेखक - मुनिराज श्री आनन्दविजयजी

पहला परिच्छेद

हार की चोरी

मगध देश में अशोकपुर नाम का एक नगर था। उस नगर में बड़े-बड़े अमीरों के दुमंजिले, तिन मंजिले मकान थे। वहाँ सब प्रकार की धन-संपत्तियों का ढ़ेर था। लोग खाने-पीने से सदा सुखी थे। घी-दूध की नदियाँ ही बहती रहती थीं। वहाँ के मंदिरों में श्री आदिनाथ भगवान की मूर्ति स्थापित थी। राजमहल की शोभा ही कुछ अनोखी थी। कोई कहीं दुःखी नहीं दिखलाई देता था।

उसी नगर में अशोकचन्द नाम के राजा रहते थे। वे बड़ेही तेजस्वी, प्रतापी, शरणागतवत्सल, दुर्जनों के दमनकर्त्ता, शत्रुओ का नाश करने वाले, प्रजा के पालक, दानी, भोगी, विवेकी, नीति-निपुण, प्रतिज्ञापालक और किये हुए उपकार को कभी नहीं भूलने वाले थे। उन्होंने पृथ्वी-मण्डल के देशों पर अपना राज्य फैला दिया था।

उनके विनय, विवेक और शील आदि अनेक गुणों से युक्त अशोकमाला और पुष्पमाला नाम की दो रानियाँ थीं। कहा है—

"रम्या सुरूपा सुभगा विनीता, प्रेमाभिमुख्या सरल-स्वभावा ।
सदा सदाचार-विचार-दक्षा, सम्प्राप्यते पुण्यवशेन पत्नी ।।"

अर्थात् - रम्या, सुन्दरी, सुभगा, विनय-सम्पन्ना, प्रेमपूर्ण हृदयवाली, सरल-स्वभावी और सदैव सदाचार के विचार में रहने वाली पत्नी बड़े पुण्योदय से ही प्राप्त होती है।

राजा के तीन पुत्र थे, जिनके नाम क्रम से अरिशूर, रणशूर और दानशूर थे। वे भी अनेक गुणों से अलंकृत, सकल कलाओं से संयुक्त और देव, गुरु, माता-पिता तथा स्वजनों की भक्ति करने वाले थे। कहा भी है, कि—

"कोऽर्थः पुत्रेण जातेन, यो न विद्वान् न भक्तिमान्?
किं तया क्रियते धेन्वा, या न सूते न दुग्धदा?"

अर्थात् – 'ऐसा पुत्र होने से ही क्या हुआ, जो न विद्वान हुआ और न भक्तिमान्। उस गाय से क्या मतलब जो न बच्चा और न दूध देती है।'

चित्तानुवर्त्तिनी भार्या, पुत्रा विनयतत्पराः ।
वैरिमुक्तं च यद्राज्यं, सफलं तस्य जीवितम् ।।

अर्थात् – मन के अनुकूल चलनेवाली स्त्री, विनयी पुत्र, और वैरी रहित राज्य जिसके पास है, उसका जीवन सफल है।

राजा अशोकचन्द्र के पास हाथी-घोड़े आदि सभी चीजें थी। उनके मंत्री बहुत ही चतुर और बुद्धिमान थे। लोग कहते है, कि-

जिस के राज्य में वापी, कूप, तड़ाग, दुर्ग, मंदिर, हर जाति के लोग, सुन्दर स्त्रीयाँ, गुणी, वक्ता, वैद्य, ब्राह्मण, विद्वान्, वेश्याएँ वणिक्, नदी, विद्या, विवेक, वित्त और विनय-सहित वीरजन, मुनि, कारीगर, वस्त्र और हाथी-घोड़े आदि होते हैं, वही राजा शोभायमान होता है।

एक दिन राजा ने अपने पुत्र अरिशूर के विवाह के लिए नया महल तैयार करने के लिए वास्तुशास्त्र में निपुण कारीगरों को बुलावा भेजा। शास्त्र में कहा गया है कि-

वैशाख, श्रावण, अगहन, फाल्गुन तथा पौष मास में मकान बनवाना चाहिए और किसी महीने में नहीं। घर की पूर्व दिशा में लक्ष्मी का भंडार, अग्नि कोण में रसोई घर, दक्षिण दिशा में सोने का घर और नैऋत्य कोण में शास्त्रागार बनवाना चाहिए। पश्चिम दिशा में भोजन करनेका स्थान, वायव्य कोण में धान्य रखने का स्थान, उत्तर दिशा में जल का स्थान तथा ईशान कोण में देवता का स्थान बनवाना चाहिए।

राजा के कारीगरों ने इसी मत के अनुसार नया महल तैयार कर

दिया। इसके बाद चतुर चित्रकारों ने उस मकान को तरह-तरह के चित्रों से चित्रित कर दिया। साथ ही दूल्हन के लिए चतुर सुनार अनेक-रत्नों और सोने के गहने गढ़ने लगे।

इसी समय देवता से वरदान पाये हुए कितने ही स्वर्णकार पाटलीपुत्र नगर से वहाँ आये और राजा के पास आकर कहने लगे— ''है महाराज! हमारे गढ़े हुए गहने जो कोई पहनता है, वह यदि राज्य के योग्य होता है तो राज्य पाता है और नहीं तो चाहे जो कोई हो वह महत्व को प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाये? यदि वह राजा हो तो सब राजाओं का सिरताज हो जाता है।''

उनकी यह बात सुन राजा ने उनसे एक हार तैयार करने का हुक्म दिया और अपने भंडारी को आज्ञा दी कि सब से उत्तम सोना, मणि तथा रत्न उनको हार बनाने के लिए दिये जाये। साथ ही उन सुनारों की निगरानी करने के लिए उन्होंने अपनी ओर से कई विश्वासी नौकर रख दिये। कारण, किसीका विश्वास एकाएक नहीं कर लेना चाहिए खासकर-

चोर, जुआरी, तेली, सुनार, घोड़ा, ठग, ठाकुर, सर्प और दुर्जनों पर विश्वास करनेवाला तो गँवार ही कहलाता है।

सुनारों ने छः महीने में वह हार तैयार किया। उस परम मनोहर हार को देखकर राजा बड़े ही प्रसन्न हुए। सभासदों को भी उसे देखकर बड़ा आनंद हुआ। राजा ने उसी समय उस हार का नाम ''देववल्लभ'' रख दिया। उन सुनारों को बहुतसा धन-वस्त्र इनाम मिला। वे भी मुँह माँगी भेट पाकर अपने नगर को लौट गये।

इसके बाद राजाने निपुण ज्योतिषियों को बुलाया। उनसे अच्छा दिन और शुभ मुहूर्त्त पूछकर राजाने उस दिन वह हार अपने कण्ठ में पहना। उसी समय नैऋत्व कोण में बैठे हुए किसीने छींक दिया। यह सुनकर राजा को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने पास ही बैठे हुए एक ज्योतिषी से पुछा— ''ज्योतिषीजी! कृपाकर यह तो बतलाइए, कि इस छींक का क्या नतीजा होगा?''

ज्योतिषीने कहा— ''महाराज! यह छींक वैसी बुरी नहीं है, क्योंकि कहा हुआ है, कि-

बैठे हुए या किसी काम की इच्छा करने वाले पुरुष के लिए दिशा के भेद से छींक शुभ या अशुभ हुआ करती है। यदि पुरव की ओर छींक हो तो अवश्य ही लाभ होगा। अग्नि कोण में हो तो हानि होगी। दक्षिण दिशा में हो तो मरण और नैऋत्य कोण में हो तो चिन्ता का कारण होता है। पश्चिम में हो तो बहुत संपत्ति मिलती है, वायव्य में हो तो सुख होता है, उत्तर में हो तो धन का लाभ होता है और ईशान कोण में हो तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। राह चलते सामने छींक हो तो मरण की सूचना समझनी चाहिए। उस समय यात्रा का विचार छोड़कर घर लोट आना चाहिए। यदि यात्रा करते समय पीछे छींक हो तो उस कार्य की सिद्धि ही समझनी चाहिए।''

ज्योतिषी की यह बात सुनकर राजा ने वह हार उतारकर भंडार में रखवा दिया।

कुछ दिन बाद राजा ने फिर अच्छा दिन सोचकर वह हार मँगवाया। भंडारी ने खज़ाने में जाकर जब उस हार को नहीं देखा, तब डरता हुआ राजा के पास आकर बोला— ''है स्वामी! मैने बहुत ढूँढा, पर वह हार नहीं मिला।''

यह सुन, राजा को विस्मय के साथ-साथ बड़ा क्रोध हुआ। वे बिगड़कर भंडारी से बोले— ''भंडार में तुम्हारे सिवा और कोई नहीं जाता, फिर हार का क्या हुआ?''

भंडारी ने कहा—''महाराज! मुझसे तो कुछ कहा नहीं जाता। यदि आपको यों विश्वास न हो तो में शपथ खाने को तैयार हूँ।''

यह सुन, मंत्रीयों ने राजा से कहा—''महाराज! बिना अच्छी तरह खोज-पड़ताल किये, किसी पर झूठमूठ कलङ्क लगाना ठीक नहीं, क्योंकि बिना बिचारे काम करने से पीछे पछताना ही हाथ आता है। विचार पूर्वक काम करनेवाला कभी विपद् के समुद्र में नहीं गिरता।''

इसके बाद राजा ने मंत्रियों की सम्मति से नगर-भर में ढ़िढोरा पिटवाया, कि जो कोई देववल्लभ नामक हार को खोज लायेगा, उसे राजा की ओर से पाँच गाँव इनाम में दिये जायेंगे।

जब सात दिनों तक ढ़िढोरा पिटने पर भी कोई यह काम करने के लिए आगे नहीं आया, तब राजा ने भूमिदेव नाम के एक परम निपुण ज्योतिषी को बुलवाकर उस हार का पता पूछा। उसने कहा—''मैं

इसका हाल कल बतलाऊँगा।''

दूसरे दिन उसने आकर कहा—''राजन्! आप इस हार का हाल मुझसे मत पूछिये, क्योंकि यदि मैं नहीं बतलाऊँगा, तो आपको थोड़ा ही दुःख होगा, पर बतलाने पर बड़ा भारी कष्ट होगा।''

यह सुन राजा की उत्सुकता बहुत बढ़ गई। वे हठ करके उस ज्योतिषी से पूछने लगे। लाचर उस ज्योतिषी ने कहा—''है राजन्! लाखों रुपयों के मोल का वह देववल्लभ हार जिसने पाया है, वही आपकी गद्दी पर बैठेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। बहुत दिनों बाद तुम्हें उस हार का पता लगेगा। आज से ठीक तीसरे दिन आपका हाथी मर जायेगा। इसी बात को अपने राज्य नाश की निशानी समझेंगे।''

ज्योतिषी की यह बात सुन, राजा को बड़ा दुःख हुआ। सारा हाल सुन, मंत्रियों ने कहा—''महाराज! आप इस बात की कुछ भी चिन्ता न करें; क्योंकि होनहार तो होकर ही रहती है।''

ठीक तीसरे दिन राजा का हाथी मर गया। अब तो राजा को ज्योतिषी की बात का पूरा विश्वास हो गया। पर वे कर ही क्या सकते थे? होनहार किसी के टाले टलने वाली होती तो राजा नल, रामचन्द्र और युधिष्ठिर आदि प्रतापी पुरुषों को तरह-तरह के दुःख क्यों उठाने पड़ते? कहा भी है, कि चाहे सूर्य पश्चिम में उगने लगे, मेरु-पर्वत चलने लगे, आग ठंडी हो जाये, पर्वत पर कमल उगने लगे तो भी विधिकृत कमरेखा नहीं टल सकती।

इसके बाद राजाने बड़े धैर्यसे यह दुःख मन का मन में ही दबाकर अपने पुत्र का विवाह किया। विवाह के बाद राजा को फिर उस हार की बात याद हो आई। याद आते ही उनका चित्त बड़ा दुःखित हो गया उन्होंने अपने मंत्री को बुलाकर कहा— ''हे मंत्री! मैं उस हार के चोर को अवश्य ही फाँसी दिलवा दूँगा। मेरा यह राज्य मेरे पुत्र के सिवा और किसीको नहीं मिल सकता।''

ऐसा विचारकर उन्होंने नगर के बाहर एक स्थान पर शूली खड़ी करवाई। सच है, अभिमान हर किसी को होता है।

टिटहरी भी आसमान को सोने पर रखने का सपना देखती है।

दूसरा परिच्छेद

पुत्र-प्राप्ति

उसी नगर में कुबेर के समान अपार धन-सम्पत्तिशाली एक श्रावक रहता था, जिसका नाम *पासदत्त* था। उसकी पत्नी का नाम *प्रियश्री* था। परंतु पूर्व जन्म के कर्म-संयोग से कुछ दिनों बाद उसकी सारी संपत्ति का नाश हो गया और वह बेचारा निर्धन हो गया। इस अवस्था को प्राप्त होकर वह उस नगर को छोड़कर पास के श्रीनिवास नामक गाँव में जाकर रहने लगा।

कहा भी है कि-

बुरे दिन आने पर राजा का लड़का भी अपने ही कर्मचारियों के घर चोरी करता है, व्यापारी झोली लेकर दूसरे के माल की फेरी करते है, ब्राह्मण भीख माँगते है, अन्य जाति वाले दूसरों के दास बन जाते है, शेठजी घर के गहने बेंच खाते है, नीच लोग घर-घर भीख माँगते डोलते है, किसान दूसरे का हल जोतते है और स्त्रियाँ चरखा कातकर दिन बिताती हैं।

उस गाँव में पहुँचकर वह किसी जमाने में शेठ कहलानेवाला व्यक्ति कन्धे पर कपड़ों का गट्ठर लादे हुए कपड़े की फेरी करता हुआ गाँव-गाँव घूमने लगा। इसीसे किसी तरह उसका गुजारा होने लगा। देहात में रहने से खर्च भी कम ही पड़ता था; क्योंकि नया अन्न, नया साग, अच्छा घी और बढ़िया दूध-दही देहात में सस्ते दामों में ही मिलता है। परंतु वहाँ रहकर वह सिवा पेट पालने के और अधिक धन नहीं जोड़ सका; क्योंकि कहावत है, कि *'जाओ नेपाल, सँग जावै कपाल'*। पूर्व कर्मो के संयोग से चाहे जहाँ जाओ एक ही सा लाभ होता है। किसी महात्मा ने भी कहा है—

कर्म कमंडल कर लिये, तुलसी जहँ लगि जाय ।

सरिता, सागर, कूपजल, बूँद न अधिक समाय ।।

यही सोचकर तो चतुर और बुद्धिमान मनुष्य देश-देश मारे फिरना बिलकुल बेकार समझते है; परंतु धन के लिए आदमी को सब कुछ करना और सब जगह जाना ही पड़ता है; क्योंकि इस संसार में धन के बिना कोई आदर नहीं करता। कहा हुआ है कि—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतिमान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ।।

अर्थात् – जिसके पास धन है, वही कुलीन माना जाता है; वही पंडित, शास्त्रज्ञ, गुणज्ञ, वक्ता, स्वरूपवान् कहा जाता है; क्योंकि धन में ही सारे गुण भरे है।

अस्तु। इसी तरह दिन बीतते रहे। इसी बीच उस शेठ के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। घोर दरिद्रता भोगते रहने पर भी शेठ और शेठानी को पुत्र पाकर परम आनंद हुआ। क्योंकि--

संसारभारखिन्नानां, तिस्रो विश्रामभूमयः ।
अपत्यं च कलत्रं च, सतां संगतिरेव च ।।

अर्थात् – इस संसार के ताप से दग्ध मनुष्यों के लिए तीन ही विश्राम के स्थान हैं—पुत्र, स्त्री और साधु-संगति।

परंतु अभाग्यवश वह लड़का भी साल-भर का होकर मर गया। इससे उसकी माता को बड़ा दुःख हुआ क्योंकि—

नारीणां प्रिय आधारः स्वपुत्रस्तु द्वितीयकः ।
सहोदरस्तृतीयः स्यादाधारत्रितयंभूवि ।।

अर्थात् – इस संसारमें स्त्रियों का पहला आधार तो पति है; दूसरा अपना पुत्र और तीसरा सहोदर भाई।

इसलिए पुत्र के लिए माता को दुःख होना तो स्वाभाविक ही है। इसी तरह बेचारा शेठ भी अपनी पहली अवस्था और पुत्र की मृत्यु को याद कर-करके दुःखी होने लगा। उसे इस तरह दुःख पर दुःख पाकर

घोर कष्ट होने लगा। एक तो जैसे तारा बिना आकाश और जल बिना सरोवर सूखा और उदास मालूम होता है, वैसे ही धन बिना मनुष्य को सब कुछ सूना ही दीखता है; क्योंकि धन हीन पुरुष का शील, शौच, क्षमा, दाक्षिण्य, मधुरता और कुलीनता आदि सभी गुण बेकार हो जाते हैं। दूसरे बेचारे को पुत्र शोक भी सहन करना पड़ा। यह तो वही हाल हुआ कि--

ग्रामे वासो दरिद्रत्वं, मूर्खत्वं कलहो गृहे ।
पुत्रैः सह वियोगश्च, दुःसहं दुःखपञ्चकम् ।।

अर्थात् - गाँव में रहना, दरिद्रता, मूर्खता, घर की फूट, पुत्रों का वियोग ये पाँच दुःसह दुःख हैं।

इसलिए बेचारे के जीवन में जो कुछ बीत रही थी, वह वही जानता था। एक दिन उसकी स्त्री प्रियश्री ने कहा— ''यहाँ आकर हमें धन मिलना तो दूर रहा, हमारा पुत्र भी जाता रहा। इस तरह सूद के लोभ में पूँजी भी चली गई। इसलिए हमें अब यह पापी गाँव छोड़ देना चाहिए; क्योंकि-

जहाँ न तो विद्या की प्राप्ति, न धन की और जहाँ धर्म-कर्म भी नहीं मिले, वहाँ एक दिन भी नहीं रहना चाहिए। इसके विपरीत जहाँ जिन मंदिर हो, शास्त्रज्ञ श्रावक हो, जल और ईधन की कमी न हो, वहीं जाकर बस रहना चाहिए। बुरे गाँव में रहना, बुरे राजा की सेवा, बुरा भोजन, झगड़ालु स्त्री, बहुत-सी लड़कियों की पैदाइश और दरिद्रता- ये छहों बातें जीते-जी नरक का दुःख देने वाली हैं।''

यह कहते-कहते उसके हृदय में शोक उमड़ आया और वह दैव को दोष देती हुई कहने लगी — ''हा देव! अब जो जन्म देना, तो आदमी के घर कभी पैदा न करना और यदि आदमी ही बनाना, तो पुत्र नहीं देना। कदाचित देना तो उसका वियोग नहीं दिखाना।''

यह कह, वह बड़े जोर-जोर से रोने लगी। शेठ उसे समझाने लगा; पर उसका दुःख किसी प्रकार कम होता नहीं दिखाई दिया। अन्त में वह फिर अपने स्वामी से कहने लगी— ''प्राणनाथ! यहीं रहते-रहते मेरा पुत्र मारा गया। इसलिए मैं यहाँ कदापि न रहूँगी। आप जल्द यहाँ

से अशोकपुर चले चलिए।''

शेठ ने कहा— ''प्यारी! हम-से गरीबों का गुजर शहर में नहीं हो सकता; क्योंकि वहाँ दूध-दही, अन्न-जल और ईंधन के लिए बहुत पैसा खर्च करना पड़ता है। इसलिए नगर में धनवानों को ही रहना चाहिए। इस दरिद्रता की हालत में वहाँ जाने से कोई हमारी बात भी न पूछेगा। फिर वहाँ क्यों जाना? कहा हुआ है कि—

है दारिद्र्य! नमस्तुभ्यं, सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः ।
पश्यामि सकलान् लोकान् न मां पश्यतिं कश्चन ।।

अर्थात् - है दरिद्रता! तेरी बदौलत, मैं तो सिद्ध हो गया; क्योंकि मैं सबको देखता हूँ; पर मुझे कोई नहीं देखता।

'धन के बिना इस संसार में कोई अपना हितमित्र नहीं होता। देखो, यदि जल सूख जाए तो कमल का मित्र होकर भी सूर्य उसकी कोई भलाई नहीं कर सकता।'

अपने स्वामी की ये बातें सुन, प्रियश्री ने कहा— 'नाथ! आपका कहना बिलकुल सच है। आप पुरुष हैं, आपकी विद्या-बुद्धि मुझ-से कहीं बढ़ी-चढ़ी है तो भी मैं जो कुछ कहती हूँ, उसे कृपाकर सुन लीजिए। इस गाँव में रहने वाले लोग अधिकतर दरिद्र हैं। इनके साथ रहते-रहते आप भी दिन-दिन दरिद्र ही होते चले जाते हैं। इसलिए यहाँ धन प्राप्ति होनी असंभव है। कुएँ में जितना पानी होगा, उतना ही नाली में आयेगा जब कुआँ ही सूखा होगा, तब पानी कहाँ से आयेगा। इसलिए अब हमें यहाँ एक दिन भी नहीं रहना चाहिए।'

अपनी स्त्री का ऐसा आग्रह देख शेठ ने नगर में जाना स्वीकारकर लिया; क्योंकि-

राजा, स्त्री, मूर्ख, बालक, अन्धों और रोगियों की हठ बड़ी बलवती होती है।

एक दिन ज्योंही उस शेठ ने अपनी स्त्री के साथ नगर में जाने के लिए पैर आगे बढ़ाया, त्यों ही उसके पैर में काँटा गड़ गया। बस उसने जाने का विचार छोड़ दिया और उसी गाँव में रह गया।

''कहते है, कि कहीं यात्रा करते समय छींक पड़े, बालक गिर

पड़े, कोई पूछ बैठे, कि कहाँ जाते हो? पैरमें काँटा गड़ जाये, बिल्ली या साँप देखने में आये, तो यात्रा नहीं करना ही अच्छा है।''

उसी दिन रात को प्रियश्री ने सपना देखा, कि उसे जमीन खोदते-खोदते मोती मिला है। यह सपना देखते ही उसकी नींद खुल गयी और उसने अपने स्वामी को जगाकर यह हाल कह सुनाया। शेठ ने उस सपने का हाल सुनकर कहा — ''प्यारी! यहीं रहते-रहते तुम्हें मोती के समान निर्मल कान्तिवाला गुणी पुत्र प्राप्त होगा। यही इस स्वप्न का फल है; क्योंकि कहा हुआ है, कि यदि

स्वप्न में राजा, हाथी, घोड़ा, सोना, साँढ़, गौ, आदि चीजे दिखाई दें, तो वंश की वृद्धि होती है और यदि दीप, अन्न, फल, पद्म, कन्या, छत्र और ध्वजा दिखाई दे, तो सम्पत्ति और सुख प्राप्त होता है। गौ, अश्व, राजा, गज, और अश्व के सिवा यदि स्वप्न में काले रङ्ग की और चीजे दिखाई दें, तो बहुत बुरे फल दिखलाती है। नमक और कपास के सिवा अन्य सफेद चीजे सपने में दिखाई दे, तो बहुत अच्छा फल होता है। स्वप्न में मनुष्य को देवता, गुरु, गाय, पिता, सन्यासी और राजा जो बातें कह जाते हैं, वह जरूर सच होकर ही रहती हैं।'

पति की ऐसी बातें सुन प्रियश्री को बड़ा आनंद हुआ। वह बड़े सुख से दिन बिताने लगी। क्रमशः पूरा समय होने पर उसके गर्भ से एक सुन्दर बालक शुभ मुहूर्त्त में उत्पन्न हुआ। शेठ ने अपनी उस समय की स्थिति के अनुसार उस बालक के जन्म की बधाई धूम-धाम से मनाई।

तीसरा परिच्छेद

अशोकपुर-यात्रा

इसी तरह वर्षों बीत गये। तब शेठ ने पुनः अशोकपुर की ओर जाने का विचार किया। जिस दिन जाने की तैयारी हुई और वह जाने लगा, उस दिन यात्रा के ही समय एक कबूतर मुँह में कुछ खाने की चीज लिए दाहिनी ओर से होकर बाईं ओर चला गया। यह देख, शेठ ने एक शकुन-विचार करनेवाले को बुलाकर पूछा, कि इस शकुन का क्या फल है? उसने कहा— "इस शकुन का फल बड़ा ही शुभ है। आप अब अवश्य ही नगर की यात्रा करें, आप को सब प्रकार से सिद्धि-लाभ ही होगा। कहा हुआ है, कि-

रास्ते में जाते समय यदि कुत्ता कोई बुरी चीजे खाता दिखाई दे तो देखनेवाले को अच्छी-अच्छी चीजे खाने को मिलेंगी। यदि उसके मुँह में धान्य हो तो लाभ, विष्ठा हो तो सुख ओर माँस हो तो राज्य की प्राप्ति होती है।"

यह बातें हो ही रही थीं, कि इतनेमें एक कुत्ता कान खुजाता हुआ नजर आया। यह देख उस सगुन विचारनेवाले ने कहा— "शेठजी! आप अवश्य ही इस समय यात्रा करें। आपको बड़ा लाभ होगा; क्योंकि यात्रा करते समय यदि कुत्ता कान खुजाता हुआ दिखाई दे, तो द्रव्य और महत्व की प्राप्ति होती है।"

यह सुन, शेठ ने उस सगुन विचारने वाले को खूब इनाम देकर विदा किया और उसी दिन यात्रा कर दी। जब वे लोग अशोकपुर नगर के पास आ पहुँचे, तब शेठ ने अपनी स्त्री से कहा— "प्यारी! बस यही बगीचे में भोजन कर हमें नगर में प्रवेश करना चाहिए; क्योंकि कहा हुआ है कि—

अभुक्त्वा न विशेद्ग्रामं, न गच्छेदेककोर ध्वनि ।
ग्राह्यो मार्गे न विश्रामः, पञ्चोक्तं कार्यमाचरेत् ।।

अर्थात् - भोजन किये बिना किसी ग्राम में नहीं जाना चाहिए, मार्ग में कभी अकेला नहीं चलना चाहिए, रास्ते के बीच में नहीं ठहरना चाहिए और पाँच पंचों की कही हुई बात जरूर माननी चाहिए।

इसके बाद शेठ ने अपनी स्त्री और पुत्र के साथ एक आम वृक्ष के नीचे विश्राम किया। सबसे पहले नहा-धोकर देवपूजा की। इसके बाद भोजन किया और थोड़ी देर तक आम के पेड़ के नीचे आराम किया। इसी समय उसने अपने मन में विचार किया— ''अहा! यह आम का पेड़ भी धन्य है, जो सदा परोपकार ही करता रहता है। पर मैं ऐसा अभागा हूँ, कि निर्धनता के मारे मुझ से कभी किसी की भलाई नहीं बन पड़ती। इधर इस आम की मंजरियों से कोयलों का, रज-कणोंसे भौंरों का, और फलों से राह चलते मुसाफिरों का निरन्तर उपकार होता रहता है।''

यही सोचते-सोचते उसके जीमें खयाल आया, कि नगरमें जाकर में किस प्रकार व्यवसाय करूँगा। मेरे पास पूँजी कहाँ है? फिर मुझे द्रव्य लाभ कहाँ से होगा? कारण-

गाय उतना ही दूध देती है, जितना उसे खाने को दिया जाता है, खेत वर्षा के परिमाण के ही अनुसार अन्न उपजाते है और व्यापार में पूँजी के ही अनुसार लाभ होता है। फिर आजकल के जमाने में बिना वस्त्रादि के आडम्बर के कहीं आदर ही नहीं होता। फिर मैं कहाँ से इतना धन लाऊँ? कहावत है कि स्त्रियों के सामने, राजसभा में, सभा-समितियों में, व्यवहार में, शत्रुओं के निकट और सुसराल में आडम्बर के ही द्वारा मान मिलता है।

शेठ इसी तरह की बातें सोच रहा था कि इतने ही में अकस्मात यह आकाश-वाणी सुनाई दी— ''सुनो! यह बालक जब पन्द्रह वर्ष का होगा, तब इसी नगर का राजा हो जायेगा, इसलिए तुम अपने मन में तनिक भी चिन्ता न करो।''

यह आकाश-वाणी सुनते ही शेठ चकित होकर चारों ओर देखने लगा। इतने में प्रियश्री ने कहा —''स्वामी! यह आकाश-वाणी अवश्य ही सत्य होगी। हमारा बिगड़ा हुआ भाग्य अवश्य ही किसी दिन बन जायेगा।''

शेठ ने कहा-- ''प्यारी! तुम्हारा कहना बिलकुल सच है, पर हमारे लड़के को राज्यसे क्या काम? हमतो यही चाहते है, कि यह दीर्घजीवी हो, जैसे पानी बिना सरोवर और सुगन्ध बिना फूल नहीं सोहता, वैसे ही सारे शुभ लक्षणों से युक्त पुरुष भी अल्पायु हो तो किस काम का? हमारे अभाग्य के मारे हमारा एक लड़का तो बच्चपन में ही मर गया; अब तो इसीपर सारी आशा है; पर यह आशा पूरी होनी भी दैवाधीन है।''

इतने में फिर आकाश-वाणी हुई कि यह बालक बड़ा भारी राजा तो होगा ही; साथ ही लम्बी आयु भी पायेगा। इतना ही नहीं, यह जिनधर्म का अनुरागी और सब प्रकार के सौभाग्य का भाजन होगा।

इस बार यह आकाश-वाणी श्रवणकर दोनो स्त्री-पुरुष बड़े ही सुखी हुए। शेठ ने फिर नीचे-ऊपर और अगल-बगल दृष्टि दौड़ाई; पर कहीं कोई मनुष्य या देवता नहीं दिखाई दिया। अबके उसने फिर अपनी स्त्रीसे कहा— ''पुण्य के बिना प्राणियों को कदापि देव-दर्शन का सौभाग्य नहीं होता। जिसका पूर्व-कृतपुण्य प्रबल होता है, वही उनके दर्शन पाता है। न मालूम यह कौन देवता थे, जो हमें इस प्रकार की वाणी आनन्ददायिनी सुना गये।''

बात पूरी होते न होते एक देवता प्रकट हुए और शेठ से कहने लगे- ''मैं आपका वही पहला पुत्र हूँ और मरकर देवता हुआ हूँ। उस समय आपने जो नमस्कार महामंत्र का उच्चारण किया था, उसीके प्रताप से मैं धरणेन्द्र के परिवार में देवता हो गया हूँ। इस आमवृक्ष का मैं ही अधिष्ठायक देवता हूँ। आपके स्नेह और अपने भाई के प्रेम के कारण मैं अपने इस भाई को राजा बनाने के लिए पूरी चेष्टा करूँगा। मेरा यह भाई बड़ा भाग्यवान है। इसलिए आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। हाँ, आज से आप इसे मेरे ही नाम से पुकारा करें, जिससे यह दीर्घायु होकर संसार के सारे सुख भोग करे।''

शेठ ने पूछा—''हे देव! तुम्हारा नाम क्या है?''

देवता ने कहा—''मेरा नाम प्रियङ्कर है।''

उसी समय शेठ ने अपने पुत्र का नाम प्रियङ्कर रख दिया।

देवता ने फिर कहा—''अब से जब कभी आप पर कोई सङ्कट आए, तब यहीं आकर इस वृक्ष के नीचे धूप जलायेंगे, बस मैं तुरंत आकर आप की इच्छा के अनुसार काम कर दूँगा।

कहा भी है, कि भोग से ही देवता, यक्ष, भूत, प्रेत सभी सन्तुष्ट होते हैं और विघ्नों का नाश करते है।'' यह कह, वह देवता अदृश्य हो गये।

इसके बाद शेठ ने शुभ मुहूर्त्त में नगर के भीतर प्रवेश किया। उसी समय दाहिनी ओर से एक गधा निकल गया। लोग कहते है, कि-

गाँव के बाहर जाते समय बायीं ओर से और अन्दर आते समय दाहिनी ओर से गधा चला जाये तो अच्छा है। पीछे की ओर से चला जाये, तो यात्रा ही रोक दे और सामने आ जाये तो भी यात्रा में विघ्न ही समझे। प्रथम शब्द हानिकारक होता है, दूसरा सिद्धिदायक, तीसरा यात्रा रोकने वाला, चौथा स्त्री समागम की सूचना देनेवाला, पाँचवाँ भयदायक, छट्ठा क्लेशकारक, सातवाँ सर्व-सिद्धिदाता और आठवाँ लाभदायक।

इस प्रकार सब तरह के अच्छे सगुनों का विचार करके शेठ ने नगर के भीतर प्रवेश किया और अपने पुराने मकान में ही आकर रहने लगा।

उस दिन से उसके दिन बड़े आनंद से कटने लगे और प्रियंकर भी अपने माता-पिता को आनंद देता हुआ दिन-दिन बड़ा होने लगा।

चौथा परिच्छेद

अपमान

कुछ दिन बाद प्रियंकर के मामा का विवाह होना निश्चित हुआ। इसलिए वह अपनी बहन को यानी प्रियंकर की माता प्रियश्री को बुलाने आया। उसने भी अपने स्वामी की आज्ञा ले, भाई के साथ, पीहर जाने की तैयारी की। सच है, माँ-बाप, पति, पुत्र और सहोदर भाई, ये पाँचों स्त्रियों के हर्ष के कारण होते हैं। इसी अवसर पर उसकी और बहनें भी पीहर आई हुई थी; पर वे सब धनी घर की थीं, इसलिए बड़े ठाटबाट से पहुँची हुई थीं। उनके साथ बहुत से दास और दासियाँ आई हुई थी। उनके रेशमी कपड़े, हीरा-मोती जड़े गहने, इत्र फूलो की सुगन्ध आदि देखकर देखनेवालों की आंखें निहाल हो जाती थी। उनके गहने-कपड़ों की शोभा से लोग लुगाइयाँ मुग्ध हो जाती थी। वे जिस ओर से निकल जाती उधर के ही लोगों की टकटकी बँध जाती थी।

इधर पासदत्त की पत्नी प्रियश्री निर्धन होने के कारण मामूली वेश लिए हुई पीहर आई। उसका वह वेश देख सबने उसकी ओर से आँखें फेर ली। किसीने हँसकर दो-दो बातें भी नहीं की। लाचार वह घरके एक कोने में ही पड़ी रहने लगी और सब ने मिल जुलकर उसे चौका-बासन का ही काम दे डाला! अपना ऐसा निरादर होते देखकर उसने सोचा—''ओह! इस संसार में कोई किसी का अपना नहीं है। सब स्वार्थ के ही नाते हैं।

फल-रहित वृक्ष को पक्षी नहीं पूछते, सूखे सरोवर को हंस नहीं पूछते, गन्ध रहित फूलों को भौंरे नहीं पूछते, राज्यभृष्ट राजा को कर्मचारि नहीं पूछते, निर्धन पुरुषों को वेश्याएँ नहीं पूछती, जले हुए वन को मृग नहीं पूछते। सच पूछो तो जिससे कुछ अपना काम निकलता है, उसीका संसार आदर करता है। सच्चा स्नेही कोई विरला ही होता है।''

उसकी यह दुर्दशा देखकर उसकी बहनें ही उसपर ताना मारती थी। और लोग यह कह उठते थे— ''देखो, पुण्य और पाप सें कितना अन्तर होता है। इसकी बहनें पुण्य के प्रताप से रानी की तरह हुक्म चलाती है और यह दासी की तरह उनके हुक्म की तामील करती हैं।''

इस तरह सब को अपने ऊपर ताने-तिश्ने छोड़ते देख प्रियश्री मन ही मन बड़ी दुखी हुई और सोचने लगी— ''संसार में लोग कुल या गुण नहीं देखते, केवल धन ही देखते हैं। कहा भी है कि जाति, विद्या, रूप सब कुछ भाड़ में चला जाए, केवल धन की ही वृद्धि होती रहे, तो लोग उसे सब गुणों की खान ही समझेगें। सचमुच मैंने पूर्व जन्म में पुण्यकर्म नहीं किये, तभी ऐसी दरिद्र बन गयी हूँ। मेरी इन बहनों ने अवश्य ही पूर्वजन्म में अच्छे-अच्छे कर्म किये होंगे, इसीसे ये इतना सुख भोग रही हैं।''

अस्तु। विवाह की धूमधाम खतम हो जाने पर सभी बहनों को उनके माता-पिता ने रेशमी वस्त्र और आभूषण आदि देकर बड़े आदर से विदा किया। इधर प्रियश्री को उसके माँ-बाप और भाइयों ने एक सफेद साड़ी देकर विदाकर दिया। इससे उसको बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। रास्ते में जाते-जाते उसने सोचा,- ''देखो अपने सगे माँ-बाप और भाई भी किस तरह अपनी ही भिन्न-भिन्न बहनों को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखते है; पर इसमें उनका कुछ भी अपराध नहीं है। यह सब मेरे पूर्वकृत पापों का ही परिणाम है। इसलिए मैं आज से धर्म को ही अपना भाई समझती हूँ; क्योंकि-

भाई, बेटे, बाप, माँ आदि सभी लोग वैरी हो जायें तो भले ही हो जाये; पर धर्म सदा अपना मित्र ही बना रहता है।''

यही सब सोचती-विचारती हुई प्रियश्री उदास मुँह बनाए अपने घर लौट आई। इस तरह उदास देख शेठ पासदत्त ने उससे इसका कारण पूछा। पहले तो कुछ देर तक वह कुछ भी न बोली; पर जब स्वामी ने बार-बार पूछा, तब उसे बतलाना ही पड़ा; क्योंकि *यद्यपि-*

भले घर की बेटियाँ लाख दुःख पाने पर भी अपनी पीहर की बुराई ससुराल में नहीं करतीं, तथापि पति को अपना गुरु, देवता और

पूज्य जानकर उसे स्वामी की आज्ञा माननी ही पड़ी।

उसकी बातें सुन पासदत्त ने कहा,— ''इस अपमान का कारण हमारी दरिद्रता ही है। यह सब पूर्वकर्मों का फल है। इसलिए चिन्ता न करो और सदा पुण्य का आचरण करती रहो। जैसा कर आये हैं, वैसा भोग रहे हैं। अब जैसा करेंगे वैसा आगे पायेंगे।''

इस प्रकार अपने स्वामी का आश्वासन पाकर वह नित्य नमस्कार महामंत्र का स्मरण, उपसर्गहर स्तोत्र की आवृत्ति, देवता की वंदना, कायोत्सर्ग और प्रतिक्रमण आदि धर्म कार्यों का आचरण करने लगी। शेठ भी विशेष प्रकार से अष्ट प्रकारी पूजा करने लगा। इस प्रकार दिन-दिन उनका अनुराग धर्मकार्यों में बढ़ने लगा और उनके पूर्व पुण्य का भी उदय हो चला।

पाँचवाँ परिच्छेद

दिन फिरे

एक दिन प्रियश्री घर लीपने के लिए मिट्टी लाने के लिए नगर के बाहर चली गयी। ज्यों ही उसने मिट्टी खोदी, त्यों ही उसे उसके भीतर पुण्य का प्रकाशक और दारिद्रय का विनाशक गड़ा हुआ खजाना दिखाई दिया। सच है, जब पूर्व पुण्य का उदय होता है, तब सभी सुख सहज ही प्राप्त हो जाते है। उस खजाने को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उसे फिर मिट्टी से ढककर अपने स्वामी को खबर देने चली आई। शेठ ने भी वहाँ आकर खजाने को देखा और झट राजा को खबर दे दी। राजा ने अपने आदमियों को भेजकर वह खजाना जमीन के अन्दर से निकलवा लिया। इसके बाद राजा ने अपने मंत्री, पुरोहित आदि से पूछा कि इस धन को क्या किया जाये? सबने कहा कि इस तरह जमीन के अन्दर छिपे हुए धन का मालिक राजा ही होता है। इसलिए यह सारा धन आपका ही होता है; तो भी यदि आप चाहें तो थोड़ा-बहुत इस शेठ को भी दे सकते हैं।''

यह सुन, राजा ने ज्यों ही उस धन को लेने के लिए हाथ बढ़ाथा, त्यों ही अकस्मात यह वाणी प्रकट हुई,— ''यह सारा खजाना इसी शेठ को मिलना चाहिए। यदि दूसरा कोई इसे लेगा तो तुरंत ही जलकर भस्म हो जायेगा।''

यह सुनते ही राजा और उनके सभी कर्मचारी डर गये। सबने वह धन शेठ को ही दे देना उचित समझा। वे समझ गये, कि कोई यक्ष इस धन का रक्षक है। यही निश्चय कर सब लोगों ने उस शेठ को ही यह धन दे देनेका फैसला कर दिया। राजा ने पूछा—''शेठजी! तुमने जिस समय यह खजाना देख पाया था, उस समय वहाँ और कोई था या तुम अकेले ही थे?''

शेठ ने कहा— ''इस बात को मेरे और मेरी स्त्री के सिवा और कोई नहीं जानता।''

राजा ने पूछा— ''तो फिर तुम राजदरबार में क्यों खबर देने

आये?''

शेठ ने कहा— ''महाराज! मैं पराये धन से सौ कोस दूर भागता हूँ। इसलिए मैंने इस धन के लिए लालच नहीं किया। साथ ही जमीन के अन्दर जो कुछ होता है, वह सब राजा का ही होता है। इसीसे मैंने आपके पास आकर खबर दी, बड़े लोग कह गये हैं कि-

किसीकी भूली हुई, खोयी हुई, गिरी हुई, या छिपाई हुई, चीज को बिना मालिक के हुक्म के नहीं लेना चाहिए। बिना दिये हुए किसी का एक तिनका भी ले लेना महा पाप है। प्रत्येक मनुष्य को ईमानदारी से प्राप्त किया हुआ धन ही ग्रहण करना उचित है। यही धन शुद्ध होता है और इसीसे किया हुआ धर्म-कर्म शुद्ध माना जाता है। इसीसे धान्य, देह, पुत्र और धर्मानुष्ठान की शुद्धि होती है। शुद्ध देहवाला प्राणी ही धर्म करने योग्य होता है। और उसको हरएक कार्य में सफलता मिलती है।''

शेठ के इस दृढ़ निश्चय को देखकर राजा ने बड़े ही सन्तोष के साथ वह सारा धन उसीको दे दिया और कहा—''शेठजी! यह धन तुम्हारे ही पुण्य से प्रकट हुआ है, इसलिए मैं इसे तुम को ही दिये देता हूँ।''

यह कह, धन देकर, राजा ने उसे बड़े आदर-मान के साथ बिदा किया। वह धन घर लाकर शेठ सोचने लगा— ''इस संसार में मुझे नियम पालन करने का फल प्राप्त हो गया। सच है, जैसे स्वयंवरा कन्या आप से आप योग्य वर के पास आती है, वैसे ही जो शुद्ध हृदय पुरुष दूसरों की चीज पर मन नहीं ललचाते, उनके पास आपसे आप लक्ष्मी चली आती है। इसलिए भाग्यवान पुरुषों को चाहिए, कि इस नियम का पालन अवश्य करें। यह मामूली सा नियम बहुत बड़े लाभ का कारण होता है।''

इतनें में शेठ की स्त्री वहाँ चली आई। उसे देख शेठ ने कहा--''प्यारी! यह सारा धन मुझे ही मिल गया। यह सब धर्म का ही प्रताप समझो।''

इसके बाद उसी धन की बदौलत शेठ पासदत्त कुछ ही दिनों में

बड़ा भारी दौलतमन्द हो गया। उसने खूब रुपया खर्च कर एक नया महल तैयार करवाया और उसी में जाकर रहने लगा। तरह-तरह के व्यापार करके उसने अच्छा धन उपार्जन किया और अपनी पत्नी के साथ संसार के समस्त सुख भोग करने लगा। प्रियश्री भी अपने स्वामी के सिखाए अनुसार धर्म-कर्म करती हुई अपने पति की परम प्रिय हो गयी। कहने वाले क्या खूब कह गये है कि-

अच्छी स्त्री धर्म-कर्म की सहायिका होती है। बुरे दिनों में किसी न किसी तरह दिन काट लेती है; मित्र के समान विश्वास पात्र होती है; हित करने में भगिनी के समान होती है, लज्जा करने में पुत्रवधू के सम़ान बन जाती है; व्याधि और विपद के समय माता के समान हो जाती है, और शय्याप्रान्त में कामिनी बन जाती है। सच पूछो तो तीनों लोक में सुशीला भार्या के समान पुरुष का कोई बन्धु नहीं है। इस प्रकार धन की वृद्धि होने पर शेठ ने बहुत से दास, दासी, गाय-भैंस और घोड़े रखे। सब लोग आनंद से खाने-पीने और मौज मारने लगे। वास्तव में धन का व्यवहारिक सदुपयोग यही है, कि उसे खूब खाने-पीने और खिलाने-पिलाने में खर्च करे।

मेघ पृथ्वी को जल प्रदान करता है, इसीसे सदा ऊँचाई पर रहता है और समुद्र केवल जल जमा किये रहता है, इसीसे वह नीचे पड़ा हुआ है। इसमें तो कोई शक नहीं, कि जिसका विधाता वाम होता है, वही निर्धन होता है। तो भी जो धन रहते हुए खाने-खिलाने में नहीं खर्च करता, उसे तो और भी अभागा समझना चाहिए। जो धनी होता हुआ भी कृपण हो, उसके पास कोई किसलिए आयेगा? किंशुक के वृक्ष में फल लदे हों तो भी सुआ उसके पास जाकर क्या लाभ उठायेगा? वह कभी उसे खाने को कुछ नहीं दे सकता।

इसी प्रकार शेठ के दिन बड़े सुख से कटने लगे। उसका पुत्र प्रियङ्कर भी सुख की गोद में पलता हुआ बड़ा होने लगा। धीरे-धीरे वह आठ वर्ष का हो गया। शेठ ने अच्छा दिन देखकर उसे पढ़ने के लिए पाठशाला में भेजा। उस अवसर पर शेठने अपने समस्त हित-मित्रों को

अपने घर बुलाकर खिलाने-पिलाने का प्रबन्ध किया। उस समय प्रियश्री ने अपने स्वामी से कहा— ''मेरी बहनोंने मेरे भाई के विवाह के अवसर पर मेरी दुर्दशा को देख, बड़े ताने मारे थे और मेरा बड़ा अपमान किया था। मेरे पीहरवालों ने भी मेरा कम अनादर नहीं किया था। इसलिए आप मेरे माता-पिता भाई-बहनों को भी जरूर यहाँ बुलवाइये और उनको वस्त्रादिक देकर सम्मानित कीजिए।''

यह सुन शेठ ने सोचा— ''अहा! मेरी यह स्त्री सचमुच बड़ी सुशीला और भाग्यवती है। इसीसे वह अपना अपमान करनेवालों को भी न्यौता देना चाहती है। ऐसी पत्नी बड़े पुण्य से ही प्राप्त होती है।

जो सती, सुरूपवती, विनयी, प्रेमाद्रहृदया, सरल स्वभावी और सदाचार के विचार में लीन रहने वाली हो। इसके विपरीत, क्रोधी, हठीली, कलहकारिणी, काली-कलूटी, घर का भेद औरों से कहनेवाली, सदा आलस्य में पड़ी रहनेवाली, पति के पहले ही पेट-भर खा लेनेवाली, गाली बकनेवाली, लज्जाहीना, चोरनी, घर के बाहर घूमनेवाली, गुणहीना, दाँत किटकिटानेवाली, मैले-कुचैले हाथ-पैरोंवाली, कृपण और सदा पराये घर जाकर बैठनेवाली स्त्री बड़ी ही दुष्ट होती है। ऐसी स्त्री पूर्व-जन्म के पाप के ही फल से मिलती है।''

मन ही मन ऐसा विचारकर शेठने कुछ कहना ही चाहा था कि प्रियश्री बोल उठी— ''स्वामी! उन धन के मद में चूर रहनेवालों को पुण्य का यह फल भी दिखला देना चाहिए।''

शेठ ने कहा— ''प्यारी! वे धन के मद में चूर है तो रहने दो। हम उन्हें यहाँ बुलाकर उनका आदर क्यों करें? अपने साथ जो जैसा व्यवहार करे उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। जो अपने ऊपर हँसे, उस पर आप भी हंसना चाहिए; क्योंकि वेश्या ने शुक के पंख तोड़ डाले थे, इसलिए शुक ने भी उसका सिर मूँड लिया था।''

यह सुन प्रियश्रीने कहा— ''हे स्वामी! जो अपनी बुराई करे, उसकी भलाई ही करनी चाहिए। यही उत्तम जनों का लक्षण है। इस संसार में कृतघ्न और नीच पुरुष तो बहुत देखने में आते है; पर बुराई

करनेवाले के साथ भलाई करनेवाले बहुत कम नजर आते है।''

अपनी स्त्री की यह बात सुन शेठ ने अपने साले सुसरों और साथियों को बुलाने के लिए आदमी भेज दिया। वह आदमी जब वहाँ पहुँचा, तब उसने देखा, कि यहाँ तो सब लोग अभिमान में चूर है। फिर जब उसने अपने मालिक की ओर से निमंत्रण दिया, तब प्रियश्री के भाई आदि कहने लगे कि जन्म से आज तक तो कभी वहाँ से न्यौता नहीं आया था, आज क्या बात हुई?

शेठ के आदमियों ने कहा—''शेठजी के लड़के को खड़िया छुलाई गई है। इसीलिए उन्होंने अपने तमाम हित-मित्रो को न्यौता देकर बुलाया है। इसीलिए आप लोगों को भी बुलाहट है।''

यह सुन, उन लोगों ने कहा— ''हम लोगों के आने की आशा छोड़ दीजिए। हम लोग नहीं जा सकते।'' शेठ के नौकरों ने उन लोगों से कितना ही आग्रह किया; पर उन्होंने जाना स्वीकार नहीं किया। अन्त में जब इधर से बड़ी हठ हुई, तब उन लोगों ने बड़े तमक-ताव से कहा— ''जहाँ अन्न, शाक, घी, दूध, दही, शक्कर ओर पान तक नहीं मिले वहाँ भला और क्या खाने को मिलेगा, जो हम वहाँ जायें? वह तो आप ही दरिद्र है।''

लाचार शेठ के आदमियों ने लौटकर वहाँ का समाचार ज्यों का त्यों कह सुनाया। प्रियश्री ने भी यह सब हाल सुना। यह सुन प्रियश्री ने कहा— ''स्वामी! आप मेरी बहनों को खूब आदर मान के साथ बुलवाइये; क्योंकि बिना अपने नाते-गोतों के कोई उत्सव अच्छा नहीं मालूम होता। कहावत है कि-

वृक्षों से सरोवर, स्त्रियों से घर, मंत्रियों से राज्य और स्वजनों से धर्म-कर्म का महोत्सव शोभायमान होता है।''

स्त्री की यह प्रबल प्रेरणा देख, सेठ ने फिर अपने ससुरालवालों को बुलाने के लिए आदमी भेजा। इस बार उन उनलोगों ने बात मानली। लाख हो, तो भी नातेदारों की बात माननी ही पड़ती है।

प्रियश्री की सब बहनें खूब बन-बठकर बड़े ठाट-बाट से आईं; हाँ, उसके भाई मारे शर्म के नहीं आये। प्रियश्री ने बड़े आदर के साथ अपनी बहनों का स्वागत-सत्कार किया।

सच पूछिये तो शक्कर, अमृत या दूध में ही मिठास नहीं है, मान पूर्वक साग भाजी खाने में भी अमृत का स्वाद आ जाता है। कहावत है कि-

पानी का रस शीतलता है, पराये घर भोजन का रस आदर है, स्त्रियों का रस अनुकुलता है; मित्रों का रस सुन्दर वचन है।

कई दिन इसी तरह स्वागत-सत्कार में कट गये। उत्सव बड़ी धूम-धाम सें समाप्त हुआ। बहनों को प्रियश्री ने वस्त्राभरण और अलङ्कार आदि देकर सम्मानित किया। यह देख, वे सब आपस में कहने लगी—''भाई! हमारी यह बहन तो बड़ी गम्भीर और चतुर है। इसने खूब हम लोगों का सत्कार किया। सच है, सभी आदमी एक-सौं नहीं होते। हम लोगों ने उस दिन इसका कैसा अपमान किया था। इस पर कितने ताने तिश्ने छोड़े थे। यह हम लोगों की बहुत बड़ी बेजा थी।''

इस तरह मन ही मन पछताती हुई उन बहनों ने प्रियश्री को बुलाकर क्षमा माँगी। यह सुनकर प्रियश्री ने कहा—''प्यारी बहनों! इस सम्बन्ध में मैं तुम्हारा कोई दोष नहीं समझती। वह तो मेरे पूर्वजन्म में किये हुए पापों का फल था। जो प्राणी धन का गर्व करता है, वह इस जन्म और अगले जन्म में भी अवश्य दरिद्र होता है। इसलिए न तो धन पाकर अभिमान करना चाहिए, न निर्धन होने पर अफसोस करना चाहिए; क्योंकि खाली को भरे और भरे को खाली करते विधाता को देर नहीं लगती।

लक्ष्मी तो पानी की तरङ्ग के समान चञ्चल है। संगम आसमान में उड़नेवाले बादल की तरह है और यौवन सेमल की रुई है। इन तीनों के उड़ते क्या देर लगती है?''

इसके बाद उसकी बहनें हर तरह से आदर-सत्कार पाकर अपने-अपने घर चली गई।

छट्ठा परिच्छेद

कैद में

इधर ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, त्यों-त्यों प्रियङ्कर निरन्तर उद्योग और विनय-पूर्वक अच्छे-अच्छे पण्डितों से शास्त्रों का अध्ययन करने लगा। पण्डित भी उसे खूब मन लगाकर पढ़ाते थे। कहावत है कि-

विनय से विद्या आती है, अथवा धन खर्च करने से विद्या सीखी जाती है अथवा विद्या देकर विद्या सीखने में आती है। इसके सिवा विद्या प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है।

मनुष्य को चाहिए कि प्रथम अवस्था में चाहे जैसे हो वैसे विद्या प्राप्त करने की चेष्टा करे। दूसरी अवस्था में धन पैदा करे। तीसरी अवस्था में धर्म का संग्रह करे।

सब कुछ सीखने के बाद प्रियङ्कर अपने गुरु से धर्म-शास्त्र पढ़ने लगा। गुरु भी उसके विनयादि गुणों से संतुष्ट होकर उसे बड़े प्रेम से पढ़ाने लगे। कहा भी है कि-

विनय से विद्या सिद्ध होती है, विनय से चित्त होता है, विनय से सब कार्य सिद्ध होते है, विनय से धर्म और यश प्राप्त होते है, विनय से सुबुद्धि प्राप्त होती है और शत्रु भी मित्र बन जाते है।

जो माता-पिता लड़कपन में अपने पुत्रों को पढ़ाते है, वे ही सच्चे माँ-बाप का काम करते है। कहते है कि-

रूप और यौवन से सम्पन्न और अच्छे कुल में उत्पन्न होने पर भी मनुष्य विद्या विहीन होने से वैसे ही नहीं अच्छा लगता, जैसे बिना गन्ध के किंशुक का फूल।

पण्डितों में सब गुण होते हैं। मूर्खों में केवल दोष ही भरे होते है। इसलिए एक गुणी की बराबरी हजारों मूर्ख भी नहीं कर सकते।

विद्या ही मनुष्य का रमणीय रूप है, यही छिपा खजाना है, यही

भोग और यश को देनेवाली है, यह सबसे बड़ी चीज है। परदेश में यह मित्र का काम देती है। यह परम देवता है। राज दरबार में भी इसकी पूजा होती है। जहाँ धन की गुजर नहीं है, वहाँ विद्या पूजा पाती है। इसलिए विद्या विहीन पुरुष को पशु ही समझना चाहिए।

विद्या के प्रताप से प्रियङ्कर ने भली भाँति धर्म-शास्त्र का अध्ययन किया, जिससे मिथ्यात्व का नाश होकर उसे सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। कहा है, कि-

मिथ्यात्व बड़ा भारी अन्धकार है, यह घोर शत्रु है। विष तो एक ही जन्म में दुख देता है पर मिथ्यात्व हजारो जन्म तक दुख देता रहता है। इसका कोई इलाज भी नहीं है।

सम्यक्त्व व्रत-रूपी वृक्ष का मूल है, पुण्य नगर का द्वार है; मोक्षमहल की नींव है और सर्व सम्पत्तियों का आकर है। दान, शील, तप, पूजा, तीर्थ-यात्रा, परम दया, सुश्रावकत्व और व्रत-पालन यह सब यदि सम्यक्त्व पूर्वक किया जाए तो बड़ा भारी फल मिलता है।

इसका प्रकार प्रियङ्कर सम्यक्त्व, रत्नत्रय, नवतत्त्व और व्रत आदि को स्वीकार कर बड़ा पक्का श्रावक हो गया।

एक दिन गुरु महाराज ने कहा—"पुत्र! जब तक जवानी रहे, तब तक धर्म-संग्रह कर लेना चाहिए; क्योंकि बुढ़ापा आने पर जब सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है, तब धर्माराधन कहाँ से हो सकता है?"

उस दिन से प्रियङ्कर नित्य ही प्रतिक्रमण, देवपूजा, प्रत्याख्यान, दया और दान आदि करने लगा। साथ ही साथ जैन-धर्मानुसार नवों तत्त्वों का हृदय में चिन्तन भी करने लगा। उसकी ऐसी धर्मश्रद्धा देख गुरु महाराज बड़े प्रसन्न हुए और कहा—"पुत्र! तुम नित्य प्रातः काल उठकर पवित्र होकर एकान्त में इस स्तोत्र का पाठ किया करना। इस स्तुति में श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली ने महामंत्र गुप्त कर रखा है। इसीलिए इसके पठन से धरणेन्द्र, पद्मावती और वैरुट्या आदि प्रसन्न होकर सहायता करते है। इसका निरंतर पाठ करने से सब कार्य सिद्ध होते है। इसका स्मरण करते ही दुष्टग्रह, भूत-प्रेत, पिशाच, शाकिनी, डाकिनी, महामारी, ईति, भीति, रोग, शोक, जल-प्लावन, जलाभाव, अग्नि-

उपद्रव, दुष्टज्वर, विषधर, चोर, राज, तथा संग्राम इत्यादि के भय दूर हो जाते है। इसके प्रताप से सुखी सन्तान और समृद्धि का संयोग देखने में आता है। इसलिए पुत्र! तुम सदा इस स्तोत्र का पाठ किया करना। किसी प्रकार का दुःख-कष्ट आ पड़े तो इसका स्मरण करना।''

गुरु महाराज का यह उपदेश सुनकर प्रियङ्कर ने उसी दिन से उपसर्ग-हर स्तोत्र का पाठ करना शुरु किया। वह प्रतिदिन सवेरे उठकर शौच आदि से निवृत्त होकर इसका पाठ करता। यदि किसी दिन इस नियम में भङ्ग हो जाता तो उस दिन को वह पूजा-पाठ में ही बिता देता था। इस प्रकार लगातार स्तवपाठ करने से यह उसके लिए सिद्ध मंत्र सा बन गया।

एक दिन प्रियंकर ने अपने पिता के पास पहुँच, हाथ जोड़कर कहा— ''पिताजा! अब आप बनज-व्यापार की झंझटों से अलग होकर केवल धर्म-चर्चा में ही जीवन बिताइए। उत्तराध्यनसूत्र में कहा हुआ है, कि जो रातें बीत जाती है, वे फिर नहीं मिलती; पर जो रात धर्म-चर्चा में बीतती है, वही सफल है। पिताजी! अब मैं आपकी कृपा से सारा कारोबार अकेले ही चला ले सकता हूँ। लोग कहते हैं, कि जो पुत्र पढ़-लिखकर विद्वान न हुआ और माता, पिता तथा देव-गुरु की भक्ति करनेवाला न हुआ, उसके जन्म लेने से कोई फल नहीं हुआ। ऐसी गाय किस काम की जो न दूध दे, न बच्चा दे? पुत्र उसे ही कहना चाहिए, जो घर-गृहस्थी का भार अपने ऊपर लेकर अपने पिता को चिन्ता मुक्त करे। कहावत है कि एक ही सुपुत्र से सिंहिनी निर्भय होकर सोती है और दस पुत्र रहते हुए भी गधी बोझा ही ढोती-ढोती मरती है। हरिनी के बहुत से पुत्र होते हुए भी किस काम के, यदि वे उसके कुछ काम नहीं आते? वन में जब आग लगती है और हरिनी को अपनी ही जान बचानी मुश्किल नजर आती है, तब वे लड़के भी उसके लिए बोझ ही बन जाते है; पर मतवाले हाथियों का मस्तक विदीर्ण करनेवाले एक ही पुत्र के बल पर सिंहिनी गर्जना करती है।''

पुत्र की इन बातों को शेठ ने अपने ध्यान में रखा और शीघ्र ही उसको कारबार सौंप देने का इरादा किया।

एक दिन शेठ ने प्रियंकर को श्रीवास नामक ग्राम में रुपया

वसूल कर लाने के लिए भेजा। वह ज्यों ही रुपया लेकर लौटा, त्यों ही भीलों ने उसे पकड़ लिया और सन्ध्या के समय श्रीपर्वत पर बने हुए किले में लाकर सीमा-प्रान्त के राजा के हाथ में उसे सौंप दिया। राजा ने उसे कैदखाने में भिजवा दिया। बेचारा निरपराधी केद कर लिया गया।

इधर थोड़ी रात बीत जाने पर भी जब प्रियंकर घर न लौटा, तब उसके माता-पिता बड़ी चिन्ता में पड़े और रो-रोकर कहने लगे— ''हा पुत्र! तुमको हमने पास के ही ग्राम में भेजा था, फिर तुम कहाँ अटक गये, जो अभी तक घर नहीं आये? क्या किसीने तुम्हें रास्ते में ही पकड़ लिया? शीघ्र आकर अपना प्यारा-प्यारा मुखड़ा हमें दिखा जाओ। तुम्हें देखे बिना हमारी जान घबरा रही है। अब के तुम घर आ जाओ, तो हम फिर कभी तुम्हें बाहर नहीं जाने देंगे। पुत्र प्रियंकर! तुम हमारे इकलौते लड़के हो। बड़े कष्टों से हमने तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है। हम तुम्हें अपनी जान से भी बढ़कर मानते है। हमारे जीवन को आनंद देने वाले एक मात्र तुम्हीं हो। क्या अब हम तुम्हें नहीं देख पायेंगे?''

इस प्रकार अपने पुत्र की एक-एक बात को याद कर दोनों स्त्री-पुरुष रोने लगे। सच है, और-और दुःख तो किसी तरह सह लिए जाते है; पर अपने प्यारे का वियोग तो मरने तक कष्ट देता रहता है। इसीसे रह-रहकर वे कह उठते थे— ''हाय! आज पुत्र के बिना हमारा घर कैसा सूना दिखाई देता है। सच है, जिसके पुत्र नहीं है, उसका घर स्मशान के समान है।

बिना पुत्र वाले का घर सूना होता है, बिना मित्र के दिशाएँ सूनी दीखती है, मूर्ख का हृदय शून्य होता है और दरिद्र को तो चारों ओर सब कुछ सूना ही सूना है।''

वे लोग इसी तरह शोक-सागर में डूबे हुए थे, इसी समय किसी ने शेठ के पास आकर कहा—''शेठजी! तुम्हारे पुत्र को तो भील पकड़कर श्रीपर्वत पर ले गये है।''

यह समाचार सुनकर शेठ और शेठानी को बड़ा दुःख हुआ। वे विशेष प्रकार से नमस्कार मंत्र और उपसर्गहर स्तोत्र का पाठ करते हुए

तरह-तरह के धर्म-कार्य करने लगे। कहा हुआ है कि-

वन में, संग्राम में, शत्रुओं के बीच में, जल में, आग में, महासमुद्र में, पर्वत पर, सोये हुए रहने पर, बेहोशी की हालत में या और किसी विषम स्थिति में पड़ने पर पूर्वकृत पुण्य ही मनुष्य के काम आते है।

इसी समय पासदत्त को देवता की कही हुई बात याद आ गयी। बस दूसरे दिन सवेरे ही वह कपूर, कस्तूरी, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ लिये हुए उसी आम्रवृक्ष के पास आ पहुँचा। ज्योंही उसने धूप जलाया, त्यों ही देवता ने प्रकट होकर कहा— ''बोलो, क्या चाहते हो?''

शेठ ने कहा— ''मेरा प्यारा पुत्र प्रियंकर राज्य पायेगा, ऐसा आपने कहा था; पर आज तो उसका उलटा ही हो गया। वह न जाने कहाँ कैद है। हम लोग उसे खोजते-खोजते हैरान है। दैवी वाणी तो कभी झूठ नहीं हो सकती; क्योंकि महापुरुषों की बात दुनिया उलट जाने पर भी नहीं उलटती। अगस्त्य ऋषि के वचन से बंधा हुआ विन्ध्याचल आज तक फिर बढ़ने नहीं पाया। इसलिए इस संकट में हमें आपकी ही शरण है।''

यह सुन, देव ने कहा— ''शेठजी! आप चिन्ता न करें। आपका पुत्र आज से पाँचवें दिन एक राजकुमारी से व्याह करके आयेगा।''

देवता के मुँह से ऐसी बात सुन, शेठ पासदत्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह मारे खुशी के फूला हुआ घर गया। उसके मुँह से यह हाल सुन, शेठानी को भी बड़ा आनंद हुआ। दोनों फिर बड़ी तत्परता के साथ धर्म-कार्य करने लगे।

सातवाँ परिच्छेद

विवाह

उधर श्रीपर्वत पर कैदी की हालत में पड़े हुए प्रियंङ्कर को भीलों के राजा ने अपने पास बुलाकर पूछा— "तुम कौन हो?"

प्रियंङ्कर ने कहा— "मैं अशोकपुर का रहने वाला, शेठ पासदत्त का बेटा प्रियंकर हूँ। मैं पास ही के एक गाँव में वसूली के काम के लिए आया हुआ था। वहाँ से लौटते समय आपके आदमियों ने मुझे गिरफ्तार कर लिया और यहाँ पकड़ लाये। मैं क्यों पकड़ा गया हूँ, इसका कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता।"

यह सुन राजा ने कहा— "अशोकपुर का राजा अशोकचन्द्र मेरा शत्रु है। इसलिए मैं वहाँ के सभी लोगों को अपना शत्रु ही समझता हूँ। मेरे आदमियों ने उस राजा के मंत्री के लड़के को पकड़ ने के लिए रास्ता रोका था। उसके बदले तुम्हीं हाथ में आ गये!"

प्रियंकर ने कहा— "राजन्! मुझ गरीब को कैदकर रखने से आपको क्या लाभ होगा? एक के अपराध के लिए दूसरे को फाँसी देना तो कोई इन्साफ की बात नहीं है। यह तो वही मसल हुई कि रावण ने सीता हरी, बाँधा गया समुद्र!"

राजा ने कहा— "दुष्टों के पास बसने वाले निरपराधी भी दंड ही पाते है। देख लो, खटमल के साथ होने से खटिया के पाये पर भी मार पड़ती है।"

प्रियंकर ने कहा— "तो भी राजा का धर्म यही है कि उचितानुचित का विचार करे।"

राजा ने कहा— "अच्छा, यदि तुम मेरी एक बात मानो, तो मैं तुम्हें छोड दूँ।"

प्रियंकर ने कहा— "कहिए।"

राजाने कहा— ''तुम मेरे आदमियों को अपने घर में ले जाकर छिपा रखो और अपने यहाँ के राजा के लड़के और मंत्री के लड़के को बाँधकर मेरे पास ले आओ। बस, मैं अपने दिल का बुखार निकाल लूँगा।''

प्रियंकर ने मन ही मन सोचकर कहा— ''राजन्! मुझसे ऐसा अधर्म नहीं किया जायेगा। यह पूरी धोखेबाजी, राजविद्रोह और अधर्म है। चाहे जान चली जाये; पर अधर्म नहीं करना चाहिए और दम निकलता रहे तो भी धर्म का काम करके मरना चाहिए। इसके सिवा यह भी कहा हुआ है, कि-

जो लोग देश-विरुद्ध, ग्राम विरुद्ध, और नगर विरुद्ध कार्य करते है वे इस लोक में भी दुःख पाते है और परलोक में भी।''

प्रियंकर की ये नीति-भरी बातें सुन, राजा ने क्रोध के साथ अपने सेवकों को हुक्म दिया, कि इस बनिये के बेटे को फिर कैदखाने में डाल दो।

बेचारा फिर कैदखाने में डाल दिया गया। वहाँ पहुँचकर वह फिर एकाग्र-चित्त से उपसर्गहर स्तोत्र का पाठ करने लगा।

इसी समय दिव्य प्रभाव से राजा के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस बनिये के बेटे को व्यर्थ अटका रखने से क्या फायदा है? इसी बीच राजसभा में एक विद्यासिद्ध ज्ञानी पुरुष आ पहुँचे। राजा ने उन्हें बड़े आदर-सत्कार से बैठाया। कुशल प्रश्न पूछने पर उन ज्ञानी पुरुष ने कहा— ''राजाओं की सौम्यदृष्टि से, प्रजाओं के हित वाक्य से और आप्तजनों के हृदय के वात्सल्य से मैं निरन्तर सुखी ही रहता हूँ।''

फिर राजा ने पूछा— ''प्रभो! आप क्या-क्या जानते है?''

उन्होंने कहा— ''मैं जीना, मरना, जाना, आना, रोग, योग, धन, क्लेश, सुख, दुःख और शुभ, अशुभ सब कुछ जान सकता हूँ।''

राजा ने कहा— ''अच्छा, तो यह बतलाइए कि मेरा शत्रु अशोकचन्द्र कब मरेगा?''

सिद्ध ने कहा— ''यह बात मैं एकान्त में कहूँगा।''

राजा ने कहा— ''यहाँ जितने आदमी बैठे है, सभी मेरे अपने

ही निजी आदमी हैं, इसलिए आप निस्सन्देह यहीं अपनी बात कह डालिए।''

सिद्ध ने कहा— ''गुप्त बात छः कानोंमें पहुँच जाने से गुप्त नहीं रहती। चार कानों तक रहे तो गुप्त रह भी सकती है। दो कानों की बात का पता तो ब्रह्मा को भी नहीं लगता।''

यह कह, उस सिद्ध पुरुष ने राजा के कान के पास मुँह ले जाकर धीरे से राजा अशोकचन्द्र के मरने का समय बतला दिया। यह सुन, राजा ने प्रकट रूप से पूछा— ''उसके मरने पर उसका कौन लड़का गद्दी पर बैठेगा?''

क्षण-भर तक ध्यान लगाकर सिद्ध ने कहा—''राजन्! उसके किसी लड़के को उसका राज नहीं मिलेगा। यही नहीं, उसके गोत्र के भी किसी आदमी को उसका राज्य नहीं मिलने का। उसका राज्य तो उसी प्रियंङ्कर नामक वणिक पुत्र को मिलने वाला है, जिसे तुमने कैदकर रखा है। उसे स्वयं देवता राज गद्दी पर बैठायेंगे।''

यह सुन, राजा ने कहा— ''महात्माजी! आप यह क्या ऊट-पटाङ्ग बातें कह रहे है? कहाँ, वह राजा और कहाँ वह बनिये का बेटा! उसका राज्य इसे क्यों कर मिल सकता है? इस निर्धन और निकम्मे वणिकपुत्र को कोई जानता भी न होगा। जिसको राज्य प्राप्ति होनेवाली होती है, उसका नाम तो जग-जाहिर हो जाता है। बड़े पुण्य से किसी को राज्य मिलता है। कहते है, कि-

जिसका पुण्य प्रबल होता है, उसका नाम नल, पाण्डव और रामचंद्र की तरह प्रसिद्ध हो जाता है और घर-घर उसकी कीर्त्ति गायी जाती है।''

सिद्ध पुरुष ने कहा— ''राजन्! मेरा ज्ञान झूठा नहीं हो सकता। वह राज्य इसी वणिक पुत्र को प्राप्त होगा, इसमें जरा भी संदेह नहीं है। अगर तुम्हें मेरे ज्ञान में संदेह हो तो कहो, जो कुछ तुमने कल खाया है वह भी मैं बतला दे सकता हूँ।''

राजा ने कहा— ''अच्छा, बतलाइये।''

सिद्ध ने कहा— ''आपने कल घी और खाँड़ मिली मिठाई, पाँच

पेड़े, मगदल के लड्डू आदि खाकर अन्त में पान खाये थे।''

यह सुन, राजा को उस सिद्ध पर पूरा विश्वास हो गया। इतने में किसी सभासद ने कहा— ''स्वामी! चूड़ामणिशास्त्र के ज्ञाता बीती हुई बातें बतला सकते है; पर होनेवाली बात नहीं बतला सकते।''

इस पर राजा ने फिर पूच्छा— ''अच्छा, आप यह तो बतलाइए कि आज मैं क्या-क्या खाऊँगा?''

सिद्ध ने कहा— ''आज आप सन्ध्या तक कुछ थोड़ा-सा जल-पान करेंगे। दिन भर कुछ भी न खायेंगें।''

राजा ने कहा— ''झुठी बात है। मैं आज बीमार थोड़े ही हूँ जो दिन भर भूखा रहूँगा?''

सिद्ध ने कहा— ''खैर, अब मैं अधिक क्या कहूँ? इतना कहना काफी समझे, कि आगामी माघ मास की शुक्ल पूर्णिमा के दिन पुष्यनक्षत्र में प्रियंकर राजा होगा। इस बात में जरा भी सन्देह मत मानें।''

इसके बाद वह सिद्धपुरुष चुप हो गये और राजा ने प्रियंकर को कैदखाने से बाहर निकलवाकर उसे अच्छे वस्त्र पहनाए, बढ़िया खाना खिलाया और उसे स्नेहपूर्वक अपने ही पास बुलाकर बैठाया। सच है, भाग्यवान को हर जगह सुख ही मिलता है और दुखी को हर जगह दुःख ही दुःख दिखाई देता है।''

इसके बाद राजा बड़ी देर तक उस सिद्धपुरुष से बातें करते रहे। जब सभा-विसर्जन करने का समय हुआ, तब सब को विदाय देकर अपने महलों में चले गये। स्नानादि करने के अनन्तर ज्योंही वे भोजन करने चले, त्योंही उनके सिर में बड़े जोर का दर्द पैदा हुआ और वे बड़े कष्ट से कराहने लगे। कितनी बार भोजन करने के लिए बुलावा आया, पर वे न जा सके। दर्द से छटपटाते हुए राजा को पड़े-पड़े नींद आ गयी। उस समय के सोये हुए वे एकदम साँझ को उठे। उस समय भी सिर का दर्द छूटा नहीं था। इसी समय मंत्री ने आकर कहा— ''महाराज। एकदम उपवास करना तो ठीक नहीं; क्योंकि ज्वर में भी एकबारगी लंघन करना उचित नहीं। जितने गुण लंघन करने में है, उतने ही हलका

भोजन करने में भी है। इसलिए इस समय आप थोड़ासा सौंफ का पानी पी लीजिए।

यह स्वादिष्ट, रोचक गात्रशोधक, शुष्क, नीरस, तिक्त और ज्वर नाशक है।''

राजा ने मंत्री की बात मानकर सौंफ का पानी पी लिया। फिर वैद्य के बतलाये अनुसार उन्होंने इलायची खाई। इलायची कफ और वायु के विकार को दूर करती है और मुख तथा मस्तक को शुद्ध करती है।

दूसरे दिन राजा ने उन सिद्धपुरुष को दरबार में बुलाकर उन्हें बहुत सा वस्त्रा भरण दान किया और बड़े आदर के साथ कहा— ''हे सिद्धपुरुष! आपका कहना सोलह आने सच हुआ। इसके बाद उन्होंने मंत्री आदि को बुलाकर कहा- ''अब मुझे इन सिद्धपुरुष की बातों में कोई सन्देह नहीं रहा। अवश्य ही प्रियङ्कर को अशोकपुर का राजसिंहासन प्राप्त होगा। अतएव यदि तुम सब लोगों की इच्छा हो, तो मैं अपनी प्यारी पुत्री वसुमती का विवाह इसीके साथ कर दूँ। इसके साथ पहले से ही नाता जुड़ जाने से आगे चलकर बहुत लाभ होगा।''

राजा की इस बात को सभी ने पसन्द किया। इसके बाद दूसरे ही दिन राजा ने अपनी कन्या का विवाह प्रियंकर के साथ कर दिया।

विवाह के दूसरे ही दिन प्रियंकर अपनी प्यारी पत्नी के साथ अपने खास कमरें में बैठा हुआ सोचने लगा— ''यह सब उपसर्गहरस्तोत्र का ही प्रभाव है। कहा है कि-

पुण्य के प्रताप से विपत्ति में भी सम्पत्ति मिल जाती है; शत्रु के घर मनोरमा स्त्री मिल जाती है और अपमान के स्थान में मान मिलता है।''

इसके बाद राजा ने अपनी लड़की और दामाद को बहुत सा धन दहेज में देकर विदा किया। वह जिस दिन अपने घर से गायब हुआ था, उसके ठीक पाँचवें दिन अपनी स्त्री के साथ अपने घर चला आया। नयी नवेली पुत्रवधू पाकर उसके माँ-बाप को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने देखा, कि सचमुच देव-वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। प्रियंकर

सचमुच पाँचवें ही दिन घर आ गया। बड़े आनंद से सब के दिन कटने लगे।

अब तो प्रियङ्कर ने गृहस्थी का पूरा भार अपने ऊपर ले लिया और अपने पिता को सारे झगड़े-झंझटों से छुटकारा दे दिया। कहा भी है कि—

"ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः, सा भार्या यत्र निर्वृत्तिः ।।"

अर्थात्—"वे ही सच्चे पुत्र है, जो पिता के भक्त हों। यथार्थ में पिता भी वही है, जो पुत्र का पालन-पोषण करे। मित्र वही है, जिसपर पूरा विश्वास किया जा सके। स्त्री वही है, जिसके पास जाने से चित्त को शान्ति मिले।

आठवाँ परिच्छेद

शुभ शकुन

एक दिन प्रियंकर देवगुरु का स्मरण कर, नमस्कारमंत्र और उपसर्ग-हर-स्तोत्र आदि का विशेष रूप से ध्यान करने के बाद सोने गया। रात के पिछले पहर उसने एक बड़ा विचित्र सपना देखा। बस यह घबराकर उठ बैठा और नमस्कार-मंत्र पढ़ने लगा। कहा है, कि-

जिनशासन के सार-स्वरूप और चौदह पूर्व के उद्धार-रूप नमस्कार-मंत्र को जिसने हृदय में धारण कर रखा है, उसको संसार से क्या भय है? यह मंत्र मंगल दायक, विघ्न-विनाशक, शांति-विधायक और स्मरण करते ही सुख देनेवाला है। नमस्कार के समान मंत्र, शत्रुंजय के समान तीर्थ, गजेन्द्रस्थान में उत्पन्न जल के समान जल जगत् में दुर्लभ है।

यही सब बातें प्रियंकर के मन में उठ रही थी। फिर ज्योंही उसने सोने का विचार किया, त्योंही उसे याद आया कि, 'विवेक-विलास' नामक ग्रंथ में लिखा है, कि-

अच्छा सपना देखकर फिर नहीं सोना चाहिए और दूसरे दिन सवेरे बड़े-बूढ़ों और गुरु के पास जाकर उसका हाल सुनाना चाहिए। बुरा सपना देखने पर तुरंत फिर सो जाना चाहिए और उसकी बात किससे नहीं करनी चाहिए।

दूसरे दिन सवेरे उठकर प्रियंकर ने अपने सपने का हाल अपने पिता से कहा—"पिताजी! मैंने बड़ा विचित्र सपना देखा है। मैंने पहले देखा, कि मैंने अपने शरीर की तमाम आंतड़ियाँ बाहर निकालकर सारे नगर को उनसे बांध लिया है। फिर मैंने अपने शरीर को आग में जलते देखा। जब लोगों ने पानी डालकर आग ठंडी की, तब मेरी नींद खुली। मालूम नहीं, इस स्वप्न का क्या फल होगा?

यह सुन पासदत्त ने उसे त्रिविक्रम उपाध्याय के पास जाकर

स्वप्न-फल पूछने की सलाह दी। प्रियंकर ने पिता के आज्ञानुसार उपाध्याय के पास जाकर इस स्वप्न का फल पूछने का विचार किया। कारण-

पति की आज्ञा में सती स्त्री को, स्वामी की आज्ञा में सेवक को, गुरु की आज्ञा में शिष्य को और पिता की आज्ञा में पुत्र को कदापि संदेह नहीं करना चाहिए।

जब प्रियंकर उपाध्याय के घर पहुँचा, तब उसने उपाध्याय के पुत्र को कुछ पढ़ते हुए पाकर पूछा, कि उपाध्यायजी कहां गये हैं? उपाध्याय के चतुर पुत्र ने कहा—जहां मुर्दे जी जाते हैं, मरे हुए लोग साँस लेते हैं, घरवाले ही आपस में लड़ते रहते हैं, वहीं गये हुए है।

प्रियंकर ने अपनी बुद्धि से इसका अर्थ लगा लिया कि वे लुहार के घर गये हैं। जब यह लुहार के घर पहुँचा, तब लुहार ने कहा, कि वे तो अभी अपनी तलवार पर सान चढ़वा कर घर गये हैं। लाचार प्रियंकर फिर उपाध्याय के घर आ पहुँचा। इस बार उसको उपाध्याय के छोटे लड़के से मुलाकात हुई। उससे पूछने पर उसने कहा- कि जहां जड़ की ही संगति है, जहां कमल के ही साथ प्रीति देखने में आती है, जो उपकारी मेघों का आधार है, वहीं मेरे पिता गये हुए हैं।

उपाध्याय के पुत्र की यह चतुराई देख, प्रियंकर ने सोचा—मालूम होता है, कि उपाध्यायजी तालाब पर नहाने गये हैं। यही सोचकर उसने पूछा-क्या वे तालाब पर गये हैं? प्रियंकर की बुद्धिमानी देख उपाध्याय के पुत्र को भी बड़ा आनंद हुआ। उसने हामी भर दी। तब प्रियंकर तालाब पर पहुंचा। वहीं उसने अपने स्वप्न की बात उपाध्याय को कह सुनायी। उपाध्याय ने विचार किया कि यह स्वप्न तो राज्य-प्राप्ति की सूचना देने वाला है। यह सोचकर उपाध्याय को मन-ही-मन बड़ा अचंबा हुआ। वे प्रियंकर को साथ लिये हुए अपने घर की ओर चले। इसी समय रास्ते में कुछ स्त्रियाँ मिली, जिनके हाथ में अक्षत, चंदन, पुष्प आदि मांगलिक द्रव्यों से सजाये हुए थाल थे। यह देख पंडित ने सोचा कि यह तो मानों बधाई देने के ही लिये चली आ रही है। इतने में दो मनुष्य सिर पर लकड़ी का बोझ लिये आते दिखाई पड़े।

यह शकुन भी राज्यलायक ही जान पड़ा। कहा जाता है, कि-

यदि नगर से बाहर निकलते या भीतर प्रवेश करते समय लकड़ी का बोझ सिर पर लिये हुए आदमी दिखायी दें तो राज्य की प्राप्ति होगी, ऐसा समझना चाहिए। थोड़ी दूर और जाने पर मद्य से भरा हुआ पात्र दिखाई दिया। यह देख पंडित ने कहा—यह सगुन भी बड़ा ही अच्छा है।

प्रियंकर ने कहा—इस पात्र में क्या रखा है?

पंडित ने कहा—इस पात्र में मद, प्रमाद, कलह, निद्रा, प्राण-नाश और नरक-प्राप्ति का साधन मौजूद है।

यह सुन प्रियंकर ने कहा—जब इसमें इतनी बुराईयाँ भरी है, तब इसका सगुन क्यों अच्छा माना जाता है?

पंडित ने कहा—शकुन शास्त्र के जानने वाले पंडितों ने मद्य को अच्छे शकुन में माना है। वे लोग कन्या, साधु, राजा, मित्र, भैंस, दूध आदि मांगलिक द्रव्य तथा वीणा, मिट्टी, मणि, अक्षत, फल, छत्र, कमल, दीप, ध्वजा, वस्त्र, अलंकार, मद्य, मांस, पुष्प आदि धातुएँ, मछली, गौ, दही और भरा घड़ा दाहिनी ओर से जाते देखना बहुत उत्तम बतलाते हैं।

यह सुन, प्रियंकर बड़ा प्रसन्न हुआ और मन-ही-मन इन शकुनों का विचार करता हुआ पंडित के घर आया। वहां पहुंचने पर पंडित ने अपनी सोमवती नामक कन्या उसके हाथों सौंप देने की इच्छा प्रकट की। यह सुन, प्रियंकर ने कहा—पंडितजी महाराज! इस बारे में आप मेरे पिताजी से बातें कीजिए। मैं तो केवल सगुन का विचार करवाने के लिए आपके पास आया हूँ। इसलिए आप मुझ से ये बातें न कीजिए।

पंडित ने कहा—हे प्रियंकर! तुम घर जाकर अपने पिता को यहीं भेज दो, तो मैं उन्हीं से तुम्हारे स्वप्न का फल कह दुँगा।

प्रियंकर ने घर आकर अपने पिता से पंडित की बातें कह सुनायी। सब सुनकर पासदत्त पंडित के घर पहुंचा। स्वप्न का फल पूछने पर पंडित ने कहा-सेठजी! इस स्वप्न से तो यही फल निकलता

है, कि तुम्हारा पुत्र अवश्य ही इस नगर का राजा होगा। स्वप्न शास्त्र में कहा है, कि-

यदि कोई मनुष्य यह सपना देखे, उसने अपनी आंतड़ियाँ बाहर निकाल कर उन्हीं से सारे नगर या ग्राम को बांध लिया है, तो वह निश्चय ही उस नगर, ग्राम या देश का राजा होता है। इसके सिवा यदि स्वप्न में आसन, शय्या, शरीर, वाहन या घर जलता दिखाई दे, तो लक्ष्मी आती है। खास करके यदि कोई प्रशांत, धार्मिक, निरोगी और जितेन्द्रिय पुरुष ऐसा स्वप्न देखे, तो वह निश्चय ही सत्य होता है। रात के चारों पहरों में देखे हुए स्वप्न क्रम से एक वर्ष, छः महीने, तीन महीने और एक महीने पर फल दिखलाते हैं।

यह सुन सेठ ने मन-ही-मन विचार किया कि अब तो देवता की बात सच होती है। यह सोच अतिशय आनंदित हो सेठ ने कहा--पंडितजी! ज्ञानी पुरुषों की बात निश्चय ही सत्य होती है, इसलिए आपकी बात जरुर ही सच होगी।

पंडित ने कहा—सेठजी! इसलिए तो मैं अपनी कन्या का विवाह तुम्हारे पुत्र के साथ करना चाहता हूं।

सेठ ने पंडित की बात स्वीकार कर ली। कुछ ही दिन बाद शुभलग्न में पंडित की कन्या सोमवती के साथ प्रियंकर का विवाह हो गया। पंडित ने भी अपने सामर्थ्यानुसार कन्या को धन-रत्न आदि दिये।

इस प्रकार प्रियंकर ने अपनी दोनों पत्नियों के साथ सुख से जीवन बिताना आरंभ किया। परंतु धर्म का ध्यान उसने पलभर के लिए नहीं छोड़ा। उसने अपनी दूसरी पत्नी को भी धर्मकार्य में अनुराग दिलाया और वह भी पूरी धार्मिक बन गयी।

नवाँ परिच्छेद

तीसरा विवाह

सेठ पासदत्त के घर के पास ही एक धनदत्त नाम का करोड़पति सेठ रहता था। वह बड़ा ही उदार, दानी, गुणी और गुणग्राही था। उसकी कीर्त्ति चारों ओर फैली हुई थी। कहा भी है कि—

दानेन वर्द्धते कीर्त्ति-लक्ष्मीः पुण्येन वर्द्धते ।
विनयेन पुनर्विद्या, गुणाः सर्वे विवेकतः ।।

अर्थात् - दान से कीर्त्ति बढ़ती है, पुण्य से लक्ष्मी बढ़ती है, विनय से विद्या बढ़ती है और विवेक से गुणों की समृद्धि होती है।

सेठ धनदत्त की स्त्री का नाम धनश्री था। उसके गर्भ से उत्पन्न जिनदास और सोमदास नाम के दो पुत्र और श्रीमती नाम की एक कन्या थी।

एक समय की बात है, कि सेठ धनदत्त ने नया मकान बनवाने की इच्छा की। इसके लिए शुभ दिन, शुभमुहूर्त्त में भूमिशोधन करवा के वास्तुशास्त्र की विधि के अनुसार नींव डलवायी। इस संबंध में लिखा हुआ है, कि-

किसी देवमंदिर के पास घर नहीं बनाना चाहिए; क्योंकि ऐसा करने से दुःख होता है। चौराहे पर मकान बनवाने से हानि होती है। धूर्त्त और राजा के मंत्री के घर के पास घर बनाने से पुत्र और धन का नाश होता है। घर में क्षीरवृक्ष की लकड़ी लगाने से लक्ष्मी का नाश होता है, कंटक-वृक्ष शत्रु की ओर से भयदायिनी होता है। मूर्ख, अधर्मी, पाखंडीमतवालों, नपुसंकों, कोढ़ियों, शराबियों और चंडालों के पड़ोंस में भी घर नहीं बनवाना चाहिए। पहले और पिछले पहर के सिवा यदि दूसरे और तीसरे प्रहर में वृक्ष या ध्वजा आदि की छाया घर पर पड़ती हो, तो निरंतर दुःख देनेवाली होती है। द्रव्य और पुण्य की इच्छा रखनेवालों को चाहिए कि पेड़ काटकर वहां रहने का घर न बनवावें।

कारण, वट-वृक्ष को काटने से भूत-प्रेत सताते हैं; इमली का पेड़ काटने से संतान नहीं जीती और यश तथा धन का नाश होता है। बुद्धिमान मनुष्यों को चाहिए, कि वृक्षरहित स्थान में घर बनवावें। अपना भला चाहने वालों को जैन-मंदिर के पीछे, शिवमंदिर की बगल में और विष्णु-मंदिर के अग्र-भाग में घर नहीं बनवाना चाहिए। जिनमंदिर के पीछे सवा सौ हाथ तक के अंदर बनवाया हुआ घर धन और जन का नाश करता है। ऐसा ही शिव मंदिर आदि के संबंध में भी समझना चाहिए। चूड़ामणि आदि के ग्रंथों में इस विषय में विस्तार-पूर्वक लिखा हुआ है।

अस्तु। कुछ दिनों में सेठ का नया मकान तैयार हो गया। शुभ मुहूर्त्त में घर की बायीं और देवालय की स्थापना की गयी और नित्य पूजा-पाठ, स्वामी वात्सल्य, दान-धर्म आदि होने लगे। उस घर में रहते हुए तीन ही दिन बीते कि चौथे दिन एक अद्‌भुत बात हो गयी। उस दिन रात को सेठ बड़े आनंद से घर में सोया हुआ था। सवेरे उठकर उसने देखा, कि वह आँगन में पलंग पर पड़ा हुआ है। यह देख, उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने दूसरे दिन रात को घर के अंदर खूब मजबूत किवाड़ बंद करके शयन किया; पर उस दिन भी यही लीला हुई। यह देख, उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने कितना पूजा-पाठ किया, धूप-दीप जलाया; पर तीसरे दिन फिर यही बात देखने में आयी। अब तो उसके घर का जो कोई प्राणी घर में सोता, वही सबेरे बाहर आंगन में पड़ा नजर आने लगा। अब तो घर-भर के लोग डर गये। और सभी उस दिन से आंगन में ही सोने लगे। सेठ ने अपने मन में विचार किया, कि अवश्य ही यह सब किसी भूतप्रेत का काम है। यही सोचकर उसने एक मांत्रिक को बुलवाकर यह हाल कह सुनाया। मंत्र-वादी उपचार करने लगा; पर वह ज्यों-ज्यों उपचार करता, त्यों-त्यों वह भूत कुपित होकर भयंकर शब्द करने लगा। तब बड़े दुःखित होकर सेठ ने सोचा, कि मैंने जो इस घर में लाखों रुपये लगाये, वे सब पानी में ही गये।

एक दिन वह इसी सोच-विचार में पड़ा हुआ बैठा था। इसी समय उधर से जाते हुए प्रियंकर ने उसे सोच में पड़ा देखकर पूछा,

सेठजी! आप इस समय इस प्रकार उदास क्यों दिखाई देते हैं?

सेठ ने कहा—मैं इस समय बड़ी चिन्ता में पड़ गया हूँ। आप तो जानते ही हैं कि-

चिन्ता शरीर को जला देती है, रोग पैदा करती है, नींद और भूख हर लेती है।

प्रियंकर ने कहा—चिंता करने से क्या फायदा है? जो कुछ विधि ने ललाट में लिख दिया है, वह तो भोगना ही पड़ता है। इसलिए धीर पुरुषों को विपद् के समय भी चिंता नहीं करनी चाहिए।

यह सुन सेठ ने अपने घर का हाल कह सुनाया। सब सुनाकर अंत में कहा—यदि आपको इसका कोई उपाय मालूम हो, तो कृपाकर बतलाइए। आप हमारे सधर्मी और बंधु हैं। इसीसे आपसे पूछता हूँ। कहा भी है, कि-

संसार में गुणी बहुत होते हैं; किन्तु परोपकार करने वाले और पराये दुःख से दुःखित होने वाले मनुष्य बहुत ही कम देखे जाते हैं।

प्रियंकर ने कहा—सेठजी! अभी तो मैं अपने कुछ घरेलू काम से जा रहा हूँ। इसलिए आप थोड़ा धैर्य धारण करें।

सेठ ने कहा—उत्तम पुरुष अपना काम छोड़कर दूसरों का काम बनाते हैं। चंद्रमा अपने कलंक को दूर करने का विचार भी नहीं करता और सदा संसार को प्रकाश देता रहता है। कहते हैं कि-

इस पृथ्वी को वृक्षों, पर्वतों और समुद्रों का बोझ नहीं मालूम पड़ता; पर जो याचना करने वाले मनुष्यों की इच्छा पूरी करने की शक्ति रखते हुए भी उसे पुरा नहीं करते, उनके बोज से दबी जाती है।

यह सुनकर प्रियंकर वहीं ठहर गया। पहले उसने घर को चारों ओर से अच्छी तरह देख लिया। सब देख लेने के बाद उसने कहा—सेठजी! आपने घर तो वास्तुशास्त्र की विधि के अनुसार ही बनवाया है; परंतु कारीगरों की भूल से इसमें कुछ दोष रह गये हैं। इसके द्वार के ऊपरी चौकठ पर मंगल के निमित्त जिनबिम्ब की जगह यक्ष की मूर्ति बनादी गयी है। कहा है, कि-

अपना भला चाहने वालों को सदा अपने द्वार पर मंगल के निमित्त जिनबिम्ब की स्थापना करनी चाहिए। शकट के आकार का घर

अर्थात् आगे से छोटा और पीछे से बड़ा घर नहीं बनाना चाहिए। यह धन और संतति का नाश करता है। आगे से बहुत भडकीला और पीछे से एकदम तंग मकान भी यश और कीर्त्ति का नाशक होता है। त्रिकोण भवन में अग्नि का भय होता है, विषम हो तो राजा का भय होता है। इसलिए अपनी सब तरह से भलाई चाहनेवालों को चारों ओर से बराबर मकान बनवाना चाहिए।

इसके बाद प्रियंकर ने उस मकान के दरवाजे पर से यक्ष की मूर्ति हटवाकर जिनमूर्ति रखवायी और चैत्रमास की - अट्ठाई के समय उस मकान के अंदर श्री पार्श्वनाथ की मूर्ति सिंहासन पर पधराकर, धूप-दीप से उनकी पूजा कर नित्य वहां जाकर उपसर्गहरस्तोत्र का पाठ करना आरंभ किया।

आठवें दिन उस मकान में रहनेवाला भूत बालक रोगी का रूप बनाये प्रियंकर का ध्यान भंग करने के लिए उसके पास आकर कहने लगा—हे दयालु! आप कृपा कर मेरी रक्षा करें। मैं बड़ाही दीन और मातृ-पितृ हीन हूँ, इसलिए दयाकर मुझे औषधादि देकर मेरी जान बचा लीजिए।

परंतु उसके बारबार रोने गिड़गिड़ाने पर भी प्रियंकर ने अपना ध्यान नहीं टूटने दिया। तब उस प्रेत ने हाथी, सिंह और साँप का रूप बनाकर डरवाना शुरु किया; पर तो भी वह चलायमान नहीं हुआ। उलटे वह और भी मुस्तैदी के साथ उपसर्गहरस्तोत्र का पाठ करने लगा। अंत में इस स्तोत्र के प्रभाव से वह प्रेत डरकर वहां से भाग गया। उस दिन से सेठ धनदत्त और उसके घरवाले बड़े सुख से अपने मकान में रहने लगे। उसके बाद वहां फिर किसी तरह का उपद्रव नहीं हुआ। सेठ धनदत्त ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री श्रीमती का विवाह प्रियंकर के साथ कर दिया। उसने बहुत सा धन दहेज में दामाद को दिया। श्रीमती के साथ प्रियंकर नाना प्रकार के सुख भोगने लगा।

दसवाँ परिच्छेद

यक्ष और प्रियंकर

उस घटना के कुछ ही दिनों बाद राजा के मंत्री हितकर को प्रियंकर द्वारा प्रेत के भगाये जाने की बात मालूम हुई। कारण, चाहे कितना ही गुप्त क्यों न रखा जाये परंतु किया हुआ भला-बुरा काम जग-जाहिर हो ही जाता है। मंत्री ने प्रियंकर को बड़ी खातिर से बुलाकर कहा—प्रियंकर! तुम बड़े ही भाग्यवान् हो। मैंने तुम्हारे करतब की बात सुनी है। तुमने सचमुच परोपकार कर बड़ा अच्छा काम किया। वास्तव में-

साधु पुरुषों की सारी विभूतियाँ परोपकार के ही लिए होती है। नदियाँ पराये उपकार के ही लिये बहती है; वृक्ष दूसरों के ही लिये फलते हैं; गायें औरों को ही अपना दूध पिला देती है। मेघ, सूर्य, वृक्ष, दानी और धर्मोपदेशक सभी पर समान दया दिखलाते हैं। कहते हैं कि-

जन्म से ही साथ-साथ रहने के कारण विंध्याचल पर हाथी की प्रीति होती है; सुगंध के ही लोभ से भौंरे की कमल पर प्रीति होती है; संबंध होने ही के कारण चंद्रमा और समुद्र एक दूसरे पर प्रेम प्रकट करते हैं; मेघ में जल के ही लोभ से चातक का नेह होता है; इस प्रकार सभी प्राणी किसी-न-किसी स्वार्थ से ही एक दूसरे के साथ बँधे हुए हैं; पर मोर और मेघ का प्रेम एकदम निर्दोष और निष्कारण होता है। इसी तरह तुम्हारा स्नेह भी अकारण ही सब जीवों पर पाया जाता है? इसीसे मैंने तुम्हें बुलवाया है, कि कुछ मेरा भी काम कर दो।

प्रियंकर ने कहा—कहिए, यदि मुझसे हो सकेगा तो जरुर ही कर दूँगा।

मंत्री ने कहा—मेरी लड़की एक दिन अपनी सखियों के साथ बाग में टहल ने गयी थी। उसी दिन से उस पर न जाने शाकिनी, डाकिनी, भूत या प्रेत की छाया पड़ गयी है। मैंने बहुतेरा उपचार

करवाया; पर किसी से कुछ लाभ नहीं हुआ। जैसे दुष्टों से कही हुई बात बेकार ही जाती है, वैसे ही मेरी सारी चेष्टायें विफल हो गयी। मैंने कितने देवी-देवताओं की मन्नत मानी; पर कुछ फल न मिला। बहुतेरे वैद्य देखकर कह गये कि उसे रोग है, पर कोई उसका रोग छुड़ा न सका। कितने योगी-यती भूत-प्रेत का दोष बतला गये; कितने ही ज्योतिषी ग्रहों का फैर दिखला गये; पर किसी का किया कुछ न हुआ। बात असल यह है कि—

वैद्या वदन्ति कफ-पित्त-मरुत्प्रकोपम् ।
ज्तोतिर्विदो ग्रहकृतं प्रवदन्ति दोषम् ।।
भूतोपसर्गमयं मन्त्रविदो वदन्ति ।
कर्मैव शुद्धमुनयोऽत्रवदन्तिनूनम् ।।

अर्थात् - वैद्य को दिखलाओ तो वह वात, पित्त और कफ की ही शिकायत बतलाता है; ज्योतिषी ग्रह का ही फेर बतलाता है; मंत्र जानने वाला भूत-प्रेत का ही फेर बतलाता है; परंतु शुद्धचेता मुनिगण इस संबंध में कर्मों का ही फेर बतलाते हैं।

इसलिए मैं इसे संकट के समय क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। और दिन तो वह कुछ अच्छी भी रहती है, पर अष्टमी और चौदस के दिन तो उसकी हालत बहुत ही बिगड़ जाती है। इन दोनों दिनों में वह कुछ भी खाती-पीती नहीं है, किसी से बोलती तक नहीं, लाख पूछो, पर वह किसी बात का जवाब नहीं देती। इसीसे उसका ब्याह भी रुका हुआ है। अतएव हे प्रियंकर! तुम कृपा कर किसी उपाय से उसका यह दुःख दूर करो। इसके लिए तुम जितना धन माँगोगे, उतना मैं दे सकता हूँ। मैं धन का लोभी नहीं हूँ। मैं यही समझता हूँ कि अपने और अपने बालबच्चों के उपकार के लिए जो धन खर्च हो, वही सफल है।

यह सुन, प्रियंकर ने कहा—हे मंत्री महोदय! आप कृपाकर अगुरु, कर्पूर, कस्तूरी आदि धूप की सामग्री मंगवाए तो मैं कोई उपाय करूँ। यदि आपकी कन्या का पुण्य प्रबल होगा, तो मेरा किया हुआ

काम पूरा पड़ेगा ही; क्योंकि—

उद्यम प्राणिनां प्रायः कृतोऽपि सफलस्तदा ।
सदा प्राचीन पुण्यानि, सबलानि भवन्ति हि ।

अर्थात् - प्रायः प्राणियों का उद्योग तभी सफल होता है, जब प्राचीन पुण्य प्रबल होता है।

यह सुन, मंत्री ने प्रियंकर की बतलायी हुई चीजें मंगवायी। उस दिन अष्टमी थी। प्रियंकर ने उसी दिन मंत्री के घर में श्री पार्श्वनाथ भगवान की मूर्ति स्थापित करवायी, पुष्प आदि से उनकी पूजा की और धूपादि से सुगंध करने के बाद उपसर्गहर स्तोत्र पढ़ने लगा। उसी समय से मंत्री की कन्या अच्छी होने लगी।

उसी समय एक अधेड़ वयस का निर्धन ब्राह्मण प्रियंकर के घर आया और उसे आशीर्वाद देकर सामने बैठ गया। प्रियंकर ने मधुर वचनों से पूछा-हे द्विजोत्तम! आपका शुभागमन किस लिये हुआ है?

ब्राह्मण ने कहा—हे सत्पुरुष! तुम्हारे ही योग्य कुछ काम लेकर आया हूँ।

प्रियंकर ने कहा—आप अपनी बात कह सुनाईए। यदि मुझसे बन पड़ेगा, तो मैं आपका काम जरूर कर दूंगा।

ब्राह्मण ने कहा—हे सज्जन! यदि तुम मेरी प्रार्थना अनसुनी न कर दो, तो कहूँ; क्योंकि कहा है, कि-

दूसरों की अर्जी सुनकर कान बहरे कर लेनेवाले संसार में पैदा ही न हों तो अच्छा है। इस संसार में परोपकार ही सार है। कहते हैं कि-

मनुष्य की नकली मूर्ति खेत की रखवाली करती है, ध्वजा घर की रक्षा करती है, भस्म और दांतों से दबाए हुए तृण प्राणों की रक्षा करते हैं; फिर जो मनुष्य होकर भी परोपकार नहीं करता, उसका तो जन्म ही व्यर्थ समझना चाहिए।

इस तरह की भूमिका बाँधकर ब्राह्मण ने कहा—हे पुरुषोत्तम! सिंहलद्वीप में सिंहलेश्वर नाम का राजा है। वह एक बड़ा भारी यज्ञ कर रहा है। वह दक्षिणा में बहुत से ब्राह्मणों को लाख रुपये दामवाले हाथी

दान करने को है। इसलिए मैं लोभ के मारे वहाँ जाना चाहता हूँ। इस पापी पेट के लिए आदमी क्या-क्या नहीं करता? किस-किस की बातें नहीं बर्दास्त करता? किस-किस के आगे सिर नहीं झुकाता? मैं भी लोभ में पड़कर वहां जाना चाहता हूँ। इसीलिए मैं अपनी स्त्री को तुम्हारे पास छोड़ जाना चाहता हूँ। जब तक मैं लौटकर नहीं आऊं, तब तक मेरी इस लावण्यमयी स्त्री को अपने घर रखो। यह तुम्हारे घर पानी भरेगी, कूटे-पीसेगी, रसोई पकायेगी। जो-जो काम तुम लोग कहोगे, वह किया करेगी। मेरा ऐसा कोई अपना सगा नहीं है, जिसके पास इसे छोड़ आऊँ, इसीलिए मैं तुम्हारे पास इसे छोड़ जाना चाहता हूँ।

यह सुनकर प्रियंकर ने कहा—विप्र देवता! इस नगर में आपकी जाति और गोत्र के बहुत से लोग रहते हैं। आप उन्हीं से क्यों नहीं यह बात कहते?

ब्राह्मण ने कहा—मेरा मन और कहीं भरता ही नहीं, इसलिए तुम्ही मेरा यह भार स्वीकार करने की दया करो।

प्रियंकर ने कहा—अच्छा, तुम अपनी स्त्री को छोड़ जाओ; पर देखो, अपना काम हो जाने पर झटपट यहां चले आना।

ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा, देखो, जो कोई काशी-वासी कश्यप गोत्री, कामदेव पिता, कामलता माता, केशव नाम करपत्रिका हाथ में और कषाय वस्त्र शरीर में-इन सात ककारों से मेरी निशानी तुम को दे, उसीको तुम मेरी स्त्री सौंप देना।

यह कह, वह ब्राह्मण वहाँ से चलने को तैयार हुआ। यह देख प्रियंकर ने कहा—विप्रजी! मैं चाहता हूँ कि आपकी यात्रा शुभ हो, आप जल्दी ही लौटे, कार्य में आपको सफलता मिले, आप जल्दी आओगे, तभी आपको आपकी स्त्री वापिस मिल जायेगी।

इसके ठीक तीसरे ही दिन उसी ब्राह्मण के से रूप, वयस, वर्ण, नाम और निशानी बतलानेवाला, उसीकी तरह बातें करने वाला, उसी के से नेत्र और मुखवाला एक ब्राह्मण प्रियंकर के पास आया। प्रियंकर ने कहा—ब्राह्मण देवता! आप इतनी जल्दी क्यों वापिस आ गये? क्या आप वहां गये ही नहीं? क्या आपके स्वजनों ने आपको यही अंटका

लिया? अथवा किसी शुभ मुहूर्त्त के लिए आप यहाँ रुके रह गये?

ब्राह्मण ने कहा—हे सज्जन! मैं समुद्र में जहाज डूबने से कहीं जान न चली जाये, इसी डर से वहां नहीं गया। कारण, धन के लोभ में जान देना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है। कहा भी है, कि यदि धन के लिए शत्रु के सामने सिर झुकाना पड़ता हो, धर्म की मर्यादा छोड़नी पड़ती हो, अत्यंत क्लेश होने की संभावना हो, तो उस धन का लोभ छोड़ देना चाहिए। इसीलिए जान जोखिम में पड़ते देखकर मैं वहां नहीं गया। यही आप जैसे भाग्यवानों के भरोसे काम चला करेगा। क्या जान देने जाऊँ?

यह कह, स्त्री को साथ लेकर वह वहां से चला गया। कई महीने बाद वह पहला ब्राह्मण अपनी स्त्री से मिलने के लिए उत्सुक होता हुआ प्रियंकर के पास आया और उसको आशीर्वाद देकर उसके सामने बैठ गया। कुशल-मंगल पूछने पर उसने कहा—महात्मन्! मैं तुम्हारी कृपा से यहां से जाकर गजादि वस्तुएँ दान में ले आया और आज सकुशल यहां आ पहुंचा हूँ। तुमने मेरे ऊपर बड़ा भारी उपकार किया है, इसलिए मैं इसी चिंता में हूँ कि किस तरह तुम्हारे उस उपकार का बदला चुकाऊँ। खैर, पीछे देखा जायेगा। इस समय कृपाकर मेरी स्त्री को मेरे हवाले कर दो।

उसकी ये बातें सुन, प्रियंकर को तो काठसा मार गया। उंसने थोड़ी देर बाद कहा—बड़े आश्चर्य की बात है। तुम तो जिस दिन अपनी स्त्री को मेरे वहां रख गये, उसके तीसरे ही दिन आकर उसे ले गये। फिर आज क्यों मुझ से मांग रहे हो? तुमने जो सात निशानियाँ बतलायी थीं, वही सब बतलाकर उसे ले गये, फिर क्यों जाल फैलाते हो?

ब्राह्मण ने कहा—वाह! यह कैसी बातें कर रहे हो? क्या मैं ब्राह्मण होकर झूठ बोलता हूँ? झूठे तो बनिये होते हैं। ये लोग देवताओं को भी ठगने को तैयार रहते हैं, फिर आदमियों की तो क्या बात है? एक बनियाने एक ही चक्कर में एक देवी और यक्ष, दोनों को फँसा डाला था। मैं तो जिस दिन यहाँ से गया, उस दिन से कभी फिर यहां आया ही नहीं। कहो तो मैं इसके लिए शपथ खा सकता हूँ। यदि तुम लोभ

के मारे या पाप के मारे मेरी स्त्री को नहीं लौटाओगे, तो मैं यहीं जान दे दूँगा। तुम्हें ब्रह्म-हत्या का पाप लगेगा।

यह सुनकर प्रियंकर मन ही मन बहुत डरा और दुःखित होकर सोचने लगा—तब मालूम होता है, कि कोई दुष्ट विद्यासाधक इस ब्राह्मण का रूप बनाकर मुझे धोखा दे गया। अब क्या हो?

यही सोचकर प्रियंकर ने कुछ कहना ही चाहा था; कि वह ब्राह्मण क्रोध के साथ बोल उठा—मैं तो अब अपनी स्त्री को लेकर ही यहाँ से उठूंगा। यह कह वह वहीं धन्ना देकर बैठ गया। उस दिन वह सारा दिन बिना खाये-पिये रह गया। तब प्रियंकर और उसके घरवालो ने उस ब्राह्मण के पास आकर कहा—मालूम होता है, कोई दुष्ट भूत-पिशाच या सिद्ध आकर हम लोगों को धोखा दे गया। बुरे दिन आने पर ऐसा ही होता है। देखो-

रामचंद्र सुनहले मृग की माया नहीं जान सके, नहुष ने ब्राह्मणों को पालकी ढोनेवाला बना लिया, ब्राह्मण से चक्र सहित धूम हरणकर लेने की दुर्बद्धि अर्जुन को उत्पन्न हो गयी और युधिष्ठिर जुए में अपनी स्त्री तक को हार बैठे। इसलिए यह निश्चय जान लो, कि विपत्ति के समय बड़े-बड़े लोगों की भी बुद्धि बिगड़ जाती है। पर हमलोग बड़े चक्कर में हैं, कि आखिरकार यह शैतानी किसकी है?

इसी तरह सब लोग सोचविचार में पड़ गये। तब अंत में प्रियंकर ने उस ब्राह्मण से कहा—देखो, मैं तुम्हारी स्त्री को अपने घर में छिपाये हुए नहीं हूँ। इस बात की मैं शपथ खा कर कहता हूँ यदि मैंने तुम्हारी स्त्री छिपा रखी हो, तो-

जीव हिंसा करने और झूठ बोलने से जो पाप होता है, वही मुझे लगे। परायी चीजें चुराने से, कृतघ्नता और विश्वासघात करने से, परायी नारी के संग भोग करने से, धर्म की निंदा करने से, पंक्ति भेद करने से, पक्षपात करने से, अपनी नारी को छोड़कर परायी नारी से प्रेम करने से, दो स्त्रियों से प्यार करने से, झूठ गवाही देने से, दूसरे की बुराई करने से, पिता से द्रोह करने से, दूसरे का घर बिगाड़ने से जो पाप लगता है, वही मुझे लगे, यदि मैंने तुम्हारी स्त्री को अपने घर में छिपा

रखा हो।

इस प्रकार प्रियंकर को शपथ खाते देखकर भी उस ब्राह्मण को विश्वास नहीं हुआ। उसने कहा—मैं पापियों के कसमें खाने का विश्वास नहीं करता।

प्रियंकर ने कहा—अच्छा, तो तुम्हें अपनी स्त्री के बदले में जितना चाहो उतना धन मुझसे लेलो।

उसने कहा—मुझे धन नहीं, स्त्री चाहिए।

प्रियंकर ने कहा—ओह! इस प्रकार झूठा कलंक अपने ऊपर लेने की अपेक्षा प्राण दे देना कहीं अच्छा है? यह कह, उसने ज्योंही अपनी गरदन पर तलवार फेर देनी चाही, त्योंही उस ब्राह्मण ने उसका हाथ थाम लिया और कहा—अच्छा, देखो, इस तरह का दुस्साहस न करो। यदि तुम मेरी एक बात मानो तो मैं अपनी माँग रद्द कर दूंगा।

प्रियंकर ने कहा—आप जो कुछ कहेंगे, वह करने के लिए मैं हर तरह से तैयार हूँ। यदि आप कहें, तो मैं सदा के लिए आपका दास हो जाऊँ।

ब्राह्मण ने कहा—यदि तुम मंत्री की लड़की का इलाज करना छोड़ दो, तो मैं तुम्हें इस झंझट से छुटकारा दे दूंगा।

प्रियंकर ने कहा—मैंने जो प्रतिज्ञा की हैं, उसे तो प्राण रहते कदापि नहीं छोड़ सकता।

ब्राह्मण ने कहा—अभी तो तुमने कहा है, कि आप जो कुछ कहेंगे, वही करूंगा। अब कहकर क्यों बात पलटते हो? यही क्या संतों की करनी है?

प्रियंकर ने कहा—चंद्रमा दोष से भरा है, कलंकी है, कूटिल है, मित्र (सूर्य) का अवसान होने पर उदय होता है, तो भी वह महादेव का प्यारा है। सज्जनगण अपने आश्रितों के अवगुणों का विचार नहीं करते, केवल गुण ही देखते हैं। एक बार जिसे वे अंगीकार कर लेते हैं, वह निर्गुण हो, तो भी उनकी आंखों पर है। देखिए, महादेव आज भी विष को धारण करते हैं, कमठ पीठ पर पृथ्वी का बोझ उठाये हुए है, समुद्र वड़वानल को अब तक नहीं छोड़ता। सज्जनों का यही स्वभाव

है। मुझे नहीं मालूम, उस बेचारी लड़की पर आप इतने क्यों रुष्ट हैं कि इस तरह उसका दुःख छुड़ाने से मुझे रोक रहे हैं? आपका उसने क्या बिगाड़ा है? उस बेचारी की हकीकत ही क्या है? मच्छर पर तोप क्यों चलाने जाते हैं?

ब्राह्मण ने कहा—हे पुरुषोत्तम! राजा के बागीचे में मेरा निवास है। मैं सब की आशा पूरी करने वाला सत्यवादी नामक यक्ष हूँ। इसीसे सब लोग मेरी पूजा करते हैं। एक दिन मंत्री की लड़की अपनी सखियों के साथ उसी बाग में टहलने आयी थी। घूमती-फिरती हुई वह मेरे मंदिर के पास आ पहुंची। मेरी मूर्ति को देखकर उसने हंसकर कहा--यह कोई देवता है या पत्थर रखा है! बस वह यह नाक भौं चढ़ाये हुए वहाँसे चली गयी। मैं भी उसी दिन से उसे तंगकर रहा हूँ।

यह सुन, प्रियंकर ने कहा—यक्षेन्द्र! रास्ते चलते हुए हाथी को देखकर यदि कोई कुत्ता भूँके, तो क्या हाथी को उसके साथ झगड़ा करना चाहिए? सिंह को देखकर सियार आदि मुँह चिढ़ावे तो क्या उसे स्यार के साथ झगड़ा करना उचित है? पगली स्यारिन यदि सिंह के सामने आकर हुँआ-हुँआ करे, तो क्या सिंह को उसके साथ लड़ना चाहिए? जो अपनी बराबरी का नहीं है, उसके साथ भले आदमी झगड़ा नहीं करते। उसे मुंह नहीं लगाते। कौआ भले ही गजराज के सिर पर बीट कर दे; पर इससे उसका कुछ नुकसान नहीं होता। कौआ तो अपनी नीचता दिखा चुका, अब वह अपनी बड़ाई क्यों खोवे? इसलिए हे उत्तम! आप इस अनजान बालि पर कोप क्यों कर रहे हैं?

जब कुमार ने इस प्रकार मीठी-मीठी बातें सुनकर उसका कोप शांत किया, तब यक्ष ने कहा—तुम्हारे उपसर्ग-हर-स्तवन के प्रताप से मैं अब इस लड़की के शरीर में नहीं रह सकता। इतनी देर तक तो मैं तुम्हारी परीक्षा कर रहा था; पर तुम्हारा साहस देखकर मैं बड़ा ही संतुष्ट हुआ हूँ, इसलिए तुम कोई वर माँगो।

प्रियंकर ने कहा—हे यक्षराज! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो, तो कृपाकर मंत्री की कन्या को एकदम नीरोग कर दो। बस मैं तुमसे इतनी ही प्रार्थना करता हूँ।

यह सुन, यक्ष ने मंत्री की कन्या को एकदम चंगा कर दिया और कहा-यह मेरी निंदा करने के कारण अनेक पुत्र पुत्रियों की माता होगी। यह कह और प्रियंकर को पशु-पक्षियों की बोली समझने की विद्या सिखलाकर यक्ष अपने स्थान को चला गया।

इधर अपनी लड़की को एकदम भला चंगा देखकर मंत्री ने अपने मन में विचार किया—प्रियंकर ने मेरी कन्या पर कितना बड़ा उपकार किया है? इसलिए मैं तो अब इसकी शादी इसीके साथ कर दूँगा। ऐसा विचार कर उसने बड़े आग्रह के साथ बड़ी धूमधाम से अपनी कन्या का विवाह प्रियंकर के संग कर दिया। बहुत सा धन-रत्न दहेज में पाकर अपनी नव-विवाहिता पत्नी के साथ घर लौटते हुए प्रियंकर ने सोचा—ओह! यह सब उपसर्ग हर स्तोत्र का ही प्रभाव है?

इसके बाद प्रियंकर अपनी समस्त स्त्रियों के साथ संसार के सारे सुख भोगता हुआ आनंद से दिन बिताने लगा।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

राज्य-प्राप्ति

यक्ष के कहे अनुसार मंत्री की कन्या यशोमती प्रतिवर्ष जुड़ैले बालक पैदा करने लगी। कुछ ही दिनो में वह कई लड़के-लड़कियों की माँ हो गयी। उनका पालन-पोषण, रक्षण, भोजन आदि जुटाते-जुटाते उसका दम नाकों आ गया। वे लड़के भी आपस में खूब लड़ा करते थे, जिससे वह और दुःखी रहती थी। रह-रहकर उसके जीमें यही आता था, कि इससे तो बांझ रहना ही अच्छा था। यह सब पराई निंदा का फल है। इसीसे कहा है, कि-

अपनी निंदा के समान पुण्य और परायी निंदा के समान पाप इस दुनिया में दुसरा नहीं है।

एक दिन प्रियंकर जिन-मंदिर में पूजा करके अपने घर लौटा आ रहा था। इसी समय रास्ते में एक नीम के पेड़ पर बैठा हुआ काग बोल उठा। प्रियंकर यक्ष की बतलाई हुई विद्या के प्रभाव से उसकी बोली समझ गया। वह काग यही कह रहा था, कि इस नीम के पेड़ की जड़ में तीन हाथ नीचे लाखों की संपत्ति गड़ी है, तुम उसे लेकर मुझे खाने को दो। यह सुनकर प्रियंकर ने वहां की मिट्टी खोदनी शुरू की। लोगों ने पूछा कि यह क्या कर रहे हो? उसने कहा, कि घर के लिए मिट्टी खोद रहा हूँ। इसके बाद काग को दही आदि खिलाकर वह वहां की गड़ी हुई संपत्ति उठाकर घर ले आया।

इसके बाद अशोक राजा ने प्रियंकर के गुणों की प्रशंसा सुनकर उसे अपने दरबार में बुलाया और कहा, कि तुम प्रतिदिन मेरे दरबार में आया करो। आज्ञानुसार वह प्रतिदिन दरबार में आने लगा। पूर्व पुण्यों के प्रभाव से राजा का स्नेह उस पर दिन-दिन बढ़ता चला गया। कहा भी है, कि-

राजा की ओर से पूरा-पूरा मान मिलना, अच्छा खाना मिलना,

खूब धन होना, सुपात्र को दान देना, हाथी-घोडे और रथ की सवारी तथा तीर्थ-यात्रा का संयोग होना बड़े ही सुख की बात है। यह सब बिना पूर्व पुण्यों के नहीं मिलता।

प्रियंकर को राजा की ओर से इतना मान मिलते देखकर और लोग भी उसकी बड़ी प्रतिष्ठा करने लगे। कहा भी है, कि-

जिसका राजदरबार में मान होता है, जो धनी, विद्वान् या तपस्वी होता है और जो दानी या वीर होता है, उसका सम्मान सभी लोग करते हैं।

इसके कुछ ही दिन बाद राजा के अरिशूर और रणशूर नाम के दोनों ही लड़के ज्वर से बीमार पड़े और मृत्यु को प्राप्त हुए। कहते हैं, कि आदमी सोचता कुछ है और कुछ और ही हो जाता है। कमल की कली में छिपा हुआ भौंरा जब तक यही सोचता रहता है, कि-

रात जायेगी, सबेरा होगा, सूर्य उदय होगा, कमल खिलेगा और मैं बाहर निकलूँगा, तब तक सुबह होते न होते हाथी आकर कमल को ही सूँड़ से तोड़कर मुँह में डाल देता है!

राजकुमारों की मृत्यु से सारे नगर में शोक उमड़ पड़ा। राजा ने तो मारे शोक और चिंता के दरबार में आना तक बंद कर दिया। यह देख मंत्री ने उन्हें समझाया—हे राजन्! यह बात तो देवाधीन है। इसमें मनुष्य का चाहा ही क्या है? एक दिन तो सभी को मरना पड़ता है। फिर इसमें शोक करने से क्या लाभ है? धर्म, शोक, भय, आहार, निद्रा, काम, कलह और क्रोध को जितना बढ़ाओ, उतना ही बढ़ते है। फिर जब तीर्थंकरों, गणधरों, चक्रवत्तियों, वासुदेवों और बलदेवों का भी आयुष्य पूर्ण हो गया है, तब साधारण मनुष्यों की क्या गिनती है? इसलिए हे स्वामी! आप चिंता छोड़िए। देखिए, सगर चक्री के साठ हजार और सुलसा के बत्तीस पुत्र तो एक साथ ही मारे गये थे। जन्म लेने वाला एक दिन अवश्य ही मरता है और मरा हुआ फिर जन्म लेता ही है। इस अटल बात के लिए शोक करना बेकार है।

इस तरह मंत्री ने बहुतेरा समझाया; पर राजा को पुत्रों का शोक नहीं भूला। वे और अधिकाधिक बेचैन होते चले गये। एक दिन राजा ने सपना देखा, कि वे गधे पर सवार होकर दक्षिणदिशा की ओर चले

जा रहे हैं। उन्होंने सवेरा होते ही मंत्री को एकांत में बुलवाकर इस सपने की बात कह सुनायी। मंत्री ने एक स्वप्नशास्त्र के जानने वाले को बुलाकर इस स्वप्न का फल पूछा। उसने कहा—इस स्वप्न से शीघ्र मृत्यु होने की बात मालूम पड़ती है। ऐसा सपना देखनेवाला बहुत जल्द मरता है।

यह बात सुनकर राजा और मंत्री दोनों ही बड़ी चिंता में पड़ गये। इसके बाद राजा पुण्य संचय करने के इरादे से देव मंदिरों में पूजा कराने और दीनों को दान देने लगे।

एक दिन राजा दरबार में आ बैठे। उन्हें प्रणाम करने के लिए मंत्री, सामंत, सेनापति, सेठ, पुरोहित और सभी दरबारी आ पहुंचे। उसी समय वहां जाने के लिए प्रियंकर भी अपने घर से बाहर निकला। इतने में आकाश-वाणी हुई—प्रियंकर! आज राजा की ओर से तुम्हारे लिये भय का कारण पैदा किया जाने वाला है। तुम चोरों की तरह बाँधे जाओगे। यह सुन, प्रियंकर ने सोचा-अरे, मैंने तो राजा का कोई अपराध नहीं किया, फिर ऐसा क्यों होगा? पर राजा का भरोसा ही क्या?

सुंदर स्त्री, जल, अग्नि और राजा का सेवन बहुत सम्हलकर करना चाहिए, नहीं तो किसी दिन जान ही आफत में पड़ती है। राजा लोग अपना मतलब गाँठने के लिए निरपराध जीवों को भी सताने से बाज नहीं आते।

यह सब सोचकर भी वह साहसी दरबार में चला ही आया। ज्योंही उसने राजा को प्रणाम करने के लिए सिर झुकाया, त्योंही एकाएक वह देववल्लभ नाम का हार उसके सिर पर से नीचे गिर पड़ा। सब दरबारियों ने उसे गिरते देख लिया। यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सब यही कहने लगे, कि राजा का खोया हुआ हार इसी प्रियंकर के पास था। अपने सिर पर से हार नीचे गिरते देखकर प्रियंकर को भी कम अचंबा नहीं हुआ। उसने सोचा—यह क्या हुआ? मुद्दतों से मिला हुआ मान-सम्मान आज चोरी का कलंक लगने से मिट्टी में मिल गया। साथ ही मौत भी सिरपर आ पड़ी। यह तो देखता हूँ कि आकाश-वाणी सच ही निकली। मैंने पिछले जन्म में किसी को व्यर्थ ही कलंक लगाया होगा? इसीसे आज मुझे भी यह दिन देखना पड़ा।

वह ऐसा सोच ही रहा था, कि राजा अशोक ने कोतवाल को हुक्म दिया, कि इस चोर प्रियंकर को सूली पर चढ़ा दो। यह सुनते ही मंत्री ने कहा-महाराज! यह काम प्रियंकर का नहीं हो सकता। यह बेचारा तो बड़ा उपकारी और पुण्यात्मा है। इसलिए आप पहले इसीसे खुलासा हाल पूछ लीजिए।

यह सुन राजा ने प्रियंकर से पूछा—प्रियंकर! तुमने यह लाख रुपये दामवाला हार कहाँ पाया? क्या किसी ने तुम्हें भेंट किया है या किसीने तुम्हारे घर बंधक रखा है?

प्रियंकर ने कहा—स्वामिन्! मैं कुछ भी नहीं जानता। मैंने तो आज तक इसे देखा भी नहीं।

मंत्री ने कहा—महाराज! जरूर यही बात है। प्रियंकर चोर नहीं है, इसलिए इस मामले में विचारकर काम करना चाहिए। कारण, बिना विचारे काम करने से पीछे हाथ मल-मलकर पछताना पड़ता है। पंडितों को चाहिए, कि कोई भी अच्छा या बुरा काम करने के पहले उसके परिणाम का विचार कर लें। यह आदमी कुलीन, गुणी और विनयी है। जैसे-

हंस की चाल, कोयल की कूक, मोर का नाच, सिंह का शौर्य, चंदन की सुगंध स्वाभाविक होती है, वैसे ही कुलीनों में विनय भी स्वभाव से ही होता है। इसलिए हे राजन्! आप उतावली न करें। मुझे तो इसमें किसी देव की करतूत झलकती है। मंत्री के मुँह से ऐसी बातें सुनकर राजा ने कहा—यह तुम्हारा जमाई है, इसीसे तुम ऐसा कह रहे हो; पर देखो, चोर की सहायता करना भी अपराध है।

चोर सात प्रकार के होते हैं, जैसे १. जो चोरी करे, २. जो चोर की मदद करे, ३. जो चोर के साथ सलाह करे, ४. जो चोर का भेद जाने, ५. जो उसके साथ लेनदेन रखे, ६. जो उसे अपने घर में टिकावे और ७. जो उसे खाने को दे।

राजा की यह घुड़की सुनते ही मंत्री के मुँह पर मानों ताला पड़ गया। वह बेचारा चुप होकर बैठ गया। तब राजा ने कोतवाल से कहा--अच्छा, कोतवाल! तुम इस चोर को खूब मजबूती से बांधो।

कोतवाल ने झटपट इस हुक्म की तामील कर डाली। तब मंत्री

से राजा ने कहा—देखो मंत्री! उस दिन ज्योतिषी ने बतलाया था, कि इस हार के चोर को ही मेरा राज्य मिलेगा; पर देखो, मैं तो इस चोर को सूली दिलवाये देता हूँ। मेरा राज्य मेरे गोत वाले पावेंगे।

मंत्री ने दबी जुबान से कहा—आपका कहना बिलकुल ठीक है।

इसी समय भरे दरबार में दिव्य रूपवती, दिव्य आभूषणवाली और दिव्य लोचनोंवाली चार विदेशी स्त्रियाँ आ पहुँचीं। उन्हें देख सारी सभा सन्नाटे में आ गयी। राजा ने उनसे पूछा—तुम कौन हो और कहाँ से किस लिये यहां आयी हो? क्या यहां तीर्थ करना है या किसी हित-मित्र से मिलना है? मेरे योग्य कोई काम हो तो बतलाओ।

उनमें से जो सबसे बड़ी उमर की थी, उसने कहा—हे राजन्! मैं पाटलीपुत्र नगर से यहां आ रही हूँ। यह प्रियंकर मेरा पुत्र है। यह वहां से नाराज होकर भाग आया है। मैं सालभर से इसे ढूढ़ँ रही हूँ। जब यहां आयी, तब मालूम हुआ कि प्रियंकर नाम का एक वैश्यपुत्र अमुक रूप-रंग और अवस्थावाला यहां रहता है। और पूछताछ करने पर पता चला कि इस पर आपकी बड़ी दया थी; पर आज यह चोरी के अपराध में पकड़ा गया है। यही सुनकर मैं दरबार में आयी हूँ। आपके दर्शनों से मेरा जीवन सफल हो गया। यह कह उसने पास बैठे हुए प्रियंकर से कहा—प्यारे पुत्र! तुम घर से नाराज होकर क्यों चले आये? इतने में दूसरी स्त्री उसे भैया-भैया! कहकर पुकारने लगी। तीसरी ने उसे अपना देवर और चौथी ने स्वामी बतलाया। यह तमाशा देख सब लोग आश्चर्य में पड़ गये और मन ही मन सोचने लगे—अब इस प्रियंकर के पाप का घड़ा फूटा चाहता है। कितने ही उसको निरपराध जानकर उसकी हालतपर तरस खाने लगे। कितने ही उसकी प्रशंसा करने लगे और कितने ही निंदा करते हुए भी पाये गये; पर प्रियंकर एकदम चुप था-वह मन ही मन दैव को दोष देता और हँसता था। उसे किसी पर क्रोध नहीं आता था।

अब उन स्त्रियों में से जो वृद्धा थी, वह बोली—राजन्! आप कृपा करके मेरे पुत्र को छुटकारा दे दीजिए। राजा ने कहा—इसने मेरा लाख रुपये का हार चुराया है। फिर मैं इसे कैसे छोड़ दूँ? वृद्धा बोली--यदि आप कहें तो, इसके लिये मैं ही दंड दे सकती हूँ। राजा ने कहा-

-अच्छा, यदि तुम तीन लाख रुपये जुर्माने के दे दो तो मैं इसे छोड़ दूंगा। वृद्धा ने कहा—तीन लाख की तो बात ही क्या है? मैं अधिक भी दे सकती हूँ; पर आप इसे छोड़ दीजिए।

राजा ने पूछा—इसका पिता कहाँ है। वह बोली—मेरे साथ है। राजा ने फिर पूछा—यह तुम्हारा कौन है? वह बोली—मेरा पुत्र है।

इतने में मंत्री ने कहा—यह सब झूठी बातें हैं। इसका पिता पासदत्त और माता प्रियश्री इसी नगर में हैं। आप उन्हें बुलाकर पूछ देखिए?

राजा ने कहा—वे तो इसके पालक हैं, उन्हें बुलाने का क्या काम है? मंत्री ने कहा—तो भी आप उन्हें एक बार यहां बुलवाइये।

तदनुसार वे लोग दरबार में बुलाये गये। अब तो राजा और सारे सभासद यह देखकर आश्चर्य में पड़ गये कि, प्रियंकर के माता-पिता का रूप-रंग, आकार-प्रकार, बोल-चाल, अवस्थाव्यवस्था ठीक इन नये बने हुए माता-पिता के समान ही है, मानो दोनों एक साँचे के ढले हों! यह देख, राजा ने मंत्री से कहा—मंत्री! तुम्हारा कहना ठीक ही मालूम पड़ता है।

अब तो दोनों पिता अपने पुत्र के लिए विलाप करने लगे। उनका आपस में झगड़ा भी होने लगा। दोनों राजा से कहने लगे कि आप इस झगडे का फैसला कर दें।

राजा ने मंत्री से कहा—हे मंत्री! तुम्हीं कोई युक्ति इसके फैसले की निकालो। मंत्री ने सोच-विचार करके कहा—इस राजसभा में एक ऐसी चौरस शिला रखी है, जिसका बोझ सात हाथियों के बराबर है। जो कोई उसे एक हाथ से उठा लेगा, उसीका यह प्रियंकर पुत्र माना जायेगा। यह सुनते ही नये आये हुए पिताने तो बात की बात में वह शिला उठाली और बेचारा पासदत्त सेठ भौंचका सा बना हुआ खड़ा-खड़ा देखता रह गया।

यह देखकर अबके मंत्री ने राजा से कहा—हे महाराज! यह शिला उठाना सामान्य मनुष्य का काम नहीं है। इसलिए यह पुरुष साधारण आदमी नहीं मालूम पड़ता। यह सुन, राजा ने भी अपने मन में कुछ विचार कर कहा-महाशय! सचमुच तुम तो कोई मामूली

आदमी नहीं मालूम होते। अवश्य ही कोई देव, दानव या विद्याधर हो। इसलिए तुम तो इसके पिता नहीं हो सकते। फिर मुझे क्यों धोखा दे रहे हो? खेल जाने दो, अपना असली स्वरूप प्रकट करो।

यह सुनते ही उस पुरुष ने अपना देव रूप दिखा दिया और वे चारों स्त्रियाँ अदृश्य हो गयी। देव ने कहा—हे राजेन्द्र! मैं तुम्हारे इस राज्य का अधिष्ठायक देव हूँ। मैं तुम्हें मृत्यु की सूचना देने और राज्य के योग्य व्यक्ति को सिंहासन पर बैठाने के लिए ही यहां पर आया हूँ। तुम इस समय बड़े लोभी हो गये हो। तुम्हारा यही हाल रहा, कि-

अंग गले गये, बाल पक गये, दांत टूट गये, लाठी टेके चलते हैं; पर आशा तृष्णा अब भी पिंड नहीं छोड़ती। राजन्! अब तुम बहुत बूढ़े हो गये। अब तो तुम्हें सब छोड़कर धर्म का काम करना और पर लोक बनाना ही उचित है। इस राज्य की बागडोर किसी योग्य व्यक्ति के हाथ में देकर धर्म में लग जाइये। देखो-

गिरती हुई छत को बचाने के लिए लोग पुराने खंभे को निकालकर नया खंभा लगाया करते हैं?

राजा ने पूछा—अब आप ही कृपा कर बतलाइये, मैं किसे राज्य दे डालूँ? खैर पहले यह तो बतलाइए, कि मैं कब मरूँगा?

देव ने कहा—ठीक आज के सातवें दिन तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी।

यह सुनते ही राजा मन ही मन बहुत डरे। कहा भी है, कि-

दारिद्र्य के समान पराभव, मरण के समान भय और क्षुधा के समान वेदना और कोई नहीं है। थोड़ी देर बाद राजा ने देवता से कहा--अच्छा, अब आप इस राज्य के योग्य कोई आदमी बतलाइये।

देव ने कहा—इस परम पुण्यात्मा प्रियंकर को ही तुम अपना राज्य दे डालो। दूसरा कोई इसके बराबर नहीं है।

राजा ने कहा—इस हार के चोर को तो राज्य देना उचित नहीं; क्योंकि

बुरे राजा के हाथ में पड़कर प्रजा कभी सुख नहीं पाती, जैसे दुष्ठ पुत्र से पिता को कभी सुख नहीं मिलता। दुष्टा नारी से पति का जीवन सुखी नहीं होता। बुरे विद्यार्थी को पढ़ाने से गुरु को यश नहीं

मिलता है।

देव ने कहा—यदि सचमुच अपनी प्रजा की भलाई चाहते हो तो पुण्य से भी बढ़कर इस प्रियंकर को ही राजा बनाओ। यह एकदम निरपराध है। इसने तुम्हारा हार नहीं चुराया। भला सोचने की बात है, कि पहरेदारों से घिरे और ताले से जकड़े हुए तुम्हारे भंडार में यह कैसे घुस सकता है? वह हार आज तक मैं ही अपने पास रखे हुए था। आज यही सूचित करने के लिए मैंने वह हार इसके पास से निकाला है, कि यही राज्य के योग्य पुरुष है।

यह सुन, राजा ने प्रियंकर के बंधन खुलवाकर देव से कहा—मेरे इस दानशूर नामक पुत्र को राज्य पर बैठाओ। देवता ने कहा—राजन्! यह भी अल्पायु है। साथ ही सिवा प्रियंकर के और कोई प्रजा प्रिय नहीं हो सकेगा। यदि तुम्हें न विश्वास हो तो नगर से चार कुमारिकाओं को बुलवाओ और उनसे कहो कि चाहे जिसके तिलक लगा दें। फिर वे जिसे आपसे आप तिलक लगा दें, उसीको गद्दी दे डालना।

यह बात राजा और सब दरबारियों को पसंद आयी। उन्होंने उसी समय नगर से चार कुमारियों को बुलवाकर उनके हाथ में कुंकुम का पात्र देकर तिलक करने को कहा। चारों ने बारी-बारी से प्रियंकर को ही तिलक किया। देवता ने उन चारों के मुख से चार श्लोक भी कहलवाये, जो इस प्रकार थे-

पहली ने कहा—

जिन भक्तः सदा भूया, नरेन्द्र त्वं प्रियंकर! ।
शूरेषु प्रथमः स्वीया, रक्षणीया प्रजा सुखम् ।।

अर्थात् – हे प्रियंकर राजा! तुम सदा जिनभक्त होना और वीरों में अग्रगण्य कहलाते हुए, अपनी प्रजा को सुख से रखते हुए उसकी रक्षा करना।

दूसरी ने कहा—

यत्र प्रियंकरो राजा, तत्र सौख्यं निरन्तरं ।

तस्मिन् देशे च वास्तव्यं, सुभिक्षं निश्चितं भवेत् ।।

अर्थात् – जहां प्रियंकर राजा है, वहीं सदा सुख ही सुख है। उस देश में सदा सुकाल रहेगा इसमें शक नहीं, इसलिए उसी देश में रहना चाहिए।

तीसरी ने कहा—

अशोक नगरे राज्यं, करिष्यति प्रियंकरः ।
द्वासप्ततिसुवर्षाणि, स्वीयपुण्यानुभावतः ।।

अर्थात् – अपने पुण्यों के प्रभाव से राजा प्रियंकर अशोक नगर में बहुत बहत्तर वर्ष तक राज्य करेगा।

चौथी ने कहा—

प्रियंकरस्य राज्येऽस्मिन्नभविष्यन्ति कस्यचित् ।
रोग-दुर्भिक्ष-मारीति-चौर-वैरिभयानि च ।।

अर्थात् – प्रियंकर के इस राज्य में किसी को इतने भय कभी न होंगे; रोग, दुर्भिक्ष, महामारी, ईति-भीति, चोर और शत्रु का भय।

इसके बाद देवताओं ने प्रियंकर के ऊपर फूल बरसाये और राजा अशोकचंद्र ने भी संतुष्ट होकर अपने हाथों उसके ललाट पर तिलक लगा दिया। तदनंतर मंत्री आदि राजपुरुषों ने प्रियंकर को राज्य पर बैठाया। उसके ऊपर छत्र-चँवर डुलने लगे। वारांगनाएँ आकर नाच-गान करने लगी। सब लोग आनंद उत्सव करने लगे।

इस प्रकार जब प्रियंकर के देवता द्वारा राज्य पर बैठाये जाने का हाल शत्रु-राजाओं ने सुना, तब वे भी भेट लेकर उसके पास आये। सारी प्रजा उसकी बड़ाई करने लगी।

इसके बाद सातवें दिन सचमुच राजा अशोकचन्द्र की मृत्यु हो गयी। प्रियंकर ने अपनी पिता की भाँति उनकी उत्तर-क्रिया की और राजा के पुत्र तथा गोत्रवालों को गाँव आदि देकर संतुष्ट किया। इसके बाद उसने बहुत से देशो पर विजय प्राप्त की और अपने पैरों पर अनेक राजाओं को सिर झुकवाया।

इस प्रकार उपसर्ग हर स्तोत्र के प्रभाव से प्रियंकर को इस लोक

में सब सुख प्राप्त हुए। उसके भंडार में अक्षय धन आ गया। कहा भी है कि इस स्तोत्र के प्रभाव से सांसारिक जीवों को सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती है और उनके शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।

अब तो राजा प्रियंकर अपने देशों में नाना-प्रकार के दान पुण्य के काम करने लगे। उनकी देखादेखी प्रजा भी धर्म का आचरण करने लगी। कहा भी है, कि 'यथा राजा तथा प्रजा'—जैसा राजा होता है, वैसे ही प्रजा होती है। यदि राजा धर्मात्मा हुआ, तो प्रजा भी धर्म की राह पर चलती है और यदि वह पापी हुआ तो सारे राज्य में पाप ही पाप छा जाता है। प्रजा सदा राजा के पीछे-पीछे चलती है।

बारहवाँ परिच्छेद

धर्म का अलौकि प्रभाव

इसी प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर धनदत्त सेठ की पुत्री श्रीमती, जो राजा प्रियंकर की पटरानी थी, वह एक लड़के की माता हुई। राजा ने बड़ी धूमधाम से उसके जन्मोत्सव पर दान पुण्य और जलसे तवाजे किये। राजा ने उसका नाम जयंकर रखा। पांचवें महीने में उस लड़के के दाँत निकलने शुरू हुए। यह देख राजा ने शास्त्रज्ञों को बुलाकर इसका फल पूछा। उन लोगों ने कहा—

महाराज! यदि बच्चे के दांत पहले ही महीने में निकलने शुरू हो तो कुल का ध्वंस होता है। दूसरे महीने में निकलने लगे तो बच्चा खुद ही मर जाता है। तीसरे महीने में निकलने से बाप और दादे की मौत होती है। चौथे महीने में निकले तो भाईयों का नाश होता है। पांचवें महीने में निकले तो अच्छा हाथी, घोड़ा या ऊँट मिलता है। छट्ठे महीने में निकले तो कुल में कलह और संताप होता है। सातवें महीने में धन-धान्य और पशुओं का नाश होता है। यदि दांत सहित जन्म हो तो उसे राज्य मिलता है।

यह सुन राजा ने पंडितों को वस्त्र और द्रव्य देकर विदा किया। इसके बाद ही राजा के दूसरे हृदय के समान और सब राजकाज में कुशल ऐसे मंत्री शूल-रोग से मृत्यु को प्राप्त हुए। इससे राजा प्रियंकर को बड़ा दुःख हुआ; क्योंकि उत्तम मंत्री के ही बिना राजा रावण ने भी अपना राज्य गंवाया तब राजा ने मंत्री के पुत्र को बुलवाकर मंत्री के पद पर प्रतिष्ठित करने के इरादे से उसकी बुद्धि की परीक्षा लेनी चाही। अतएव उन्होंने इस श्लोक का अर्थ पूछा—

मुखं विनाऽत्येकनरोऽति शुद्धो, हस्तेन भक्ष्यं बहु भाजनस्थम् ।
रात्रिंदिवादौ न कदापि तृप्तः, शास्त्रानभिज्ञः परमार्गदर्शी ।

अर्थात् – एक अति शुद्ध मनुष्य बिना मुंह के ही पात्र में रखे हुए बहुत से भक्ष्य-द्रव्य को हाथ से खा जाता है; पर रातदिन खाते रहने पर भी उसे तृप्ति नहीं होती। वह आप तो शास्त्र से अनभिज्ञ है; पर औरों को मार्ग बतलाता है। बतलाओ, वह कौन है!

यह सुन बुद्धिमान् प्रधान-पुत्र ने कहा—ऐसा तो दीपक होता है।

राजा ने फिर पूछा—

नारी तीन इकट्ठी मिलीं, दो गोरी तीजी साँवली ।
पुरुष बिना नहिं भावे काज, सारे जग में करतीं राज ।।

मंत्री पुत्र ने कहा—कलम, दावात और स्याही।

उसकी इस प्रकार की हाजिर जवाबी देख राजा बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उसको मंत्री बना ही लिया। ठीक ही कहा है, कि-

विमल बुद्धि वाले गुणी पुरुष नित्य शास्त्र का बोध और उसके द्वारा मान-सन्मान पाते हैं। बुद्धि से सब कुछ मिलता है। तत्काल शत्रु भी पराजित हो जाते हैं। बुद्धि की सहायता से ही एक छोटा सा राजा बड़े-बड़े वीरों की सहायता से शत्रु के दुर्ग पर अधिकार कर लेता है। बुद्धि से ही चाणक्य, रोहक और अभयकुमार आदि पुरुषों ने बहुत शीघ्र महत्त्व प्राप्त किया था।

एक दिन की बात है, कि अशोकपुर के पास ही एक बगीचे में श्रीधर्मनिधि सूरि अपने परिवार सहित पधारे। वन-रक्षक के मुँह से उनके शुभागमन का संवाद सुनकर प्रियंकर राजा बड़े आनंदित हुए और अपने परिवार सहित उनको वंदना करने के लिए उद्यान में आ पहुँचे। विधि-पूर्वक उनको वंदना कर सब लोग उचित स्थान पर बैठ गये। तब आचार्य महाराज ने उन्हें योग्य समझकर इस प्रकार धर्मोपदेश दिया—

श्री जिन-वंदन, जिन-पूजा, नमस्कार मंत्र का स्मरण, सुपात्र को दान, सुरीश्वर (सद्गुरु) को नमन, नमस्कार मंत्र का जाप करना और देव गुरु की भक्ति करना तथा जीव-दया करना यह श्रावकों का नित्य

कर्म है। खूब धूम-धाम से तीर्थ यात्रा करना, साधर्मिकवात्सल्य करना, श्री संघ की पूजा करना, आगम लिखवाना और उसकी वाचना लेनी, यह वर्षकृत्य है। तीर्थयात्रा का फल इस प्रकार है—निरंतर शुभ ध्यान, असार लक्ष्मी से चार प्रकार के सुकृत की प्राप्ति रूपी उत्तम फल, तीर्थ की उन्नति और तीर्थंकर पद की प्राप्ति। यात्रा करने से चार प्रकार के गुण प्राप्त होते हैं। और भी कहा है कि—

वपुः पवित्री कुरु तीर्थ यात्रया, चित्तं पवित्री कुरु धर्मवाञ्छया ।
वित्तं पवित्रीकुरु पात्रदानतः, कुलं पवित्रीकुरु सच्चरित्रतः ।।

अर्थात् - हे महानुभावो? तीर्थ यात्रा द्वारा शरीर को, धर्माभिलाष द्वारा मन को, सत्पात्र को दान देकर धन को और सच्चरित्र द्वारा कुल को पवित्र करो।

विशेषतः श्री शत्रुंजय-तीर्थ में जाकर जिनेश्वर के दर्शन करने से दोनों बुरी गतियों-नरक और तिर्यंच का क्षय हो जाता है और पूजा तथा स्नान करने से हजार युगों तक किये हुए दुष्कर्म दूर हो जाते हैं। ध्यान करने से हजार पल्योपम का, अभिग्रह करने से लाख पल्योपम का और सम्मुख जाने से एक सागरोपम का संचित पाप नष्ट हो जाता है। फिर नमस्कार के समान मंत्र नहीं है, शत्रुंजय के समान तीर्थ नहीं है, जीव-दया के समान धर्म नहीं है और कल्पसूत्र के समान शास्त्र नहीं है।

इस प्रकार गुरु महाराज के उपदेश सुनकर राजा प्रियंकर का मन धर्म में और भी दृढ़ हो गया।

इसके बाद राजा ने श्री गुरु को प्रणाम कर उपसर्ग हर स्तोत्र के पाठ करने की आम्नाय पूछी। तब गुरु महाराज ने कहा—हे राजन्! इस स्तोत्र में श्री भद्रबाहु स्वामी ने अनेक मंत्र यंत्र छिपा रखे हैं, जिसके स्मरण मात्र से जल, अग्नि, विष, सर्प दुष्ट ग्रह, राजरोग, राक्षस, शत्रु, महामारी, चोर और जंगली जानवरों आदि का भय दूर होता है। राजन्! तुम्हें यह सारा वैभव इसी के द्वारा प्राप्त हुआ है। पहले इस स्तोत्र में छः गाथाएँ थी। छट्ठी गाथा के प्रभाव से धरणेन्द्र को स्वयं

आकर स्मरण करने वाले के कष्ट दूर करने पड़ते थे। इसलिए धरणेन्द्र ने श्री भद्रबाहु स्वामी से प्रार्थना की कि भगवन्! मुझे बार-बार यहां आना पड़ता है, इसलिए मैं अपने स्थान पर सुख से नहीं रहने पाता। अतएव आप मेरे ऊपर कृपाकर छट्ठी गाथा गुप्त कर रखिए। पाँच गाथाएँ स्मरण करने वाले के दुःख अपने स्थान पर से ही दूर कर दिया करूंगा। यह प्रार्थना सुनकर श्री भद्रबाहूस्वामी ने छट्ठी गाथा छिपा डालो। तभी से यह स्तोत्र पांच गाथाओंवाला रह गया है। पहली गाथा से उपसर्ग, उपद्रव और विषधर जीवों के विष का निवारण होता है। प्रथम और द्वितीय गाथा से ग्रह, रोग, महामारी, विषम, ज्वर, स्थावर, जंगम विष का शमन होता है। पहली, दूसरी और तीसरी गाथा स्मरण करने से दुःख, दुर्गति और हीनकुल की प्राप्ति नहीं होती। सुख, सौभाग्य, लक्ष्मी और महत्त्व की प्राप्ति होती है। चार गाथाएँ स्मरण करने से सब प्रकार के अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। इन पांचों गाथाओं में श्री भद्रबाहु स्वामी ने श्री पार्श्वचिंतामणि नाम का महामंत्र छिपा रखा है। और भी स्तंभन, मोहन और वशीकरण आदि बहुत से मंत्र छिपा रखे हैं।

इस प्रकार उपसर्ग हर स्तोत्र का बड़ा भारी प्रभाव सुनकर राजा बडे प्रसन्न हुए और श्री गुरु महाराज को प्रणाम कर अपने परिवार सहित अपने नगर में चले आये। उस दिन से वे पास वाले श्री पार्श्व महाप्रभु के मंदिर में जाकर सारी रात और एक पहर बीत जाने तक उपसर्ग स्तोत्र का ध्यान करने लगे।

एक दिन राजा प्रियंकर रात के समय श्री पार्श्व प्रभु की प्रतिमा के सामने बैठे हुए स्तोत्र के ध्यान में निमग्न थे। उनके अंगरक्षक प्रासाद के बाहर बैठे थे। सवेरा हो गया; पर राजा बाहर नहीं निकले। सभी मंत्री आदि दरबारी दरबार में आये; पर राजा को न देखकर उनके अंग रक्षकों से पूछने लगे। उन्होंने कहा—वे रात को जिन मंदिर के अंदर गये, तब से बाहर ही नहीं आये। यह सुन मंत्री मंदिर में चले आये। वहां आकर उन्होंने देखा, कि मूल द्वार के कपाट बंद है। कपाट के छिद्र में आँख लगाकर मंत्री ने देखा, कि श्रीपार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा सुगंधित

पुष्पों से सजी हुई है। सामने दीपक जल रहा है। पर राजा वहां नहीं दिखाई दिये। यह देख, मंत्री ने सोचा—हो सकता है, वे मंदिर के भीतर किसी कोने में सो रहे हों; परंतु नहीं, आशातना के भय से राजा कभी ऐसा काम नहीं कर सकते। यही सोचकर मंत्री ने मधुर वचनों से राजा को संबोधनकर कहा—हे राजन्! सवेरा हो गया और सभी सभासद सभा में बैठे हुए आपकी राह देख रहे हैं। इसलिए आप शीघ्र आकर सभा की शोभा बढ़ाइये।

कई बार मंत्री ने ऐसा ही कहकर पुकारा; पर कोई जवाब नहीं मिला। तब मंत्री ने सोचा कि अवश्य ही कोई देव दानव या विद्याधर राजा को हर ले गया। तब मंत्री ने मंदिर के द्वार को खोलने के लिए अनेक उपाय किये; पर कोई काम नहीं आया। जैसे पुण्यहीन का कोई मनोरथ पूरा नहीं पड़ता। कुल्हाड़ी मारने पर उसीकी धार मुड़ जाती थी; पर द्वार नहीं खुलता था। सच है, देवताओं का बंद किया हुआ द्वार मनुष्यों से कैसे खुले? पीछे मंत्री ने वहां धूप, नैवेद्य रखे। तब अधिष्ठायक देवने संतुष्ट होकर कहा—हे मंत्री! वृथा चेष्टा न करो। पुण्यवान् राजा की दृष्टि पड़ते ही द्वार आप से आप खुल जायेगा। इस समय तुम्हारे राजा आनंद में हैं। उनके लिए चिंता न करो।

यह सुन, मंत्री ने कहा—हे देव! मेरे राजा कहाँ है? क्या कोई उन्हें चुरा ले गया? वे कब आवेंगे?

देव ने कहा—उनको धरणेन्द्र अपने देव लोक में अपनी समृद्धि दिखलाने के लिए ले गये हैं। इसलिए वे अब आज से दसवें दिन यहां आवेंगे। यह कह देव अदृश्य हो गया। मंत्री ने सभा में आकर सबको यह बात कह सुनायी। सब लोग संतुष्ट होकर अपने-अपने घर चले गये। इसके ठीक दसवें दिन मंत्री परिवार सहित नगर के बाहर राजा का स्वागत करने के लिए आये। इतने में दिव्य अश्व पर सवार होकर राजा भी वन की ओर से आते हुए सबको दिखाई दिये। तत्काल राजा ने वहां आकर सबसे भेंट की। मंत्री आदि ने उन्हें सादर प्रणाम किया। तदनंतर खूब बाजे-गाजे और झंडो पताकाओं के साथ राजा ने नगर में प्रवेश किया। सबसे पहले वे जिन मंदिर में आये। उसी समय उनकी दृष्टि

पड़ते ही किवाड़ खुल गये। राजा ने तीन बार प्रदक्षिणा कर, निस्सिही कहकर मूल-मंडप में प्रवेश किया और प्रभु के पास अनेक उत्तम फल रखकर जिन प्रतिमा के सामने बैठे हुए इस प्रकार स्तुति करनी शुरू की-

'जिन पार्श्व प्रभु की धरणेन्द्र भी सेवा करते हैं, सब सुरासुर भक्ति के साथ जिनकी स्तुति करते हैं, जिन्होंने कमठ को प्रतिबोध दिया, जिनका स्मरण करने से समस्त कार्यों की सिद्धि होती है, जिनका तेज अत्यंत अद्‌भुत है, जिनका प्रभाव आज तक प्रकट है, ऐसे श्री पार्श्वनाथ प्रभु! आप हमारा कल्याण करें। श्रेष्ठ कनक, शंख और प्रवाल के विविध आभूषणों से विभूषित और मरकत-मणि तथा मेघ के समान, हे पार्श्वनाथ स्वामी! मैं तुम्हारी बार-बार स्तुति करता हूँ। इस कलिकाल में भी एक सौ सत्तर तीर्थंकरों में अपने प्रभाव से आसजनों की सत्वर सिद्धि करने वाले तथा सब देवों से पूजित हे पार्श्वनाथ! मैं तुम्हारी वंदना करता हूँ।' इस प्रकार स्तुति कर तथा शक्रस्तव आदि का पाठ कर राजा अपने घर आये।

वहां आने पर मंत्री आदि ने राजा से पाताल लोक का स्वरूप और धरणेन्द्र की समृद्धि पूछी। यह सुन राजा ने कहा—उस दिन मैं मंदिर में बैठा हुआ उपसर्ग स्तोत्र का पाठ कर रहा था, उसी समय एक काल भुजंग प्रकट हुआ। उसे देखकर भी मैं विचलित नहीं हुआ। जब यह श्री पार्श्वनाथ प्रभु के पद्मासन पर चढ़ने लगा, तब मैंने प्रतिमा की आशातना की आशंका से उसकी पूँछ पकड़ी। पकड़ते ही उसने सर्प का रूप छोड़ देवता का रूप धारण कर लिया, यह देख मैंने पूछा—तुम कौन हो? उसने कहा—मैं तो श्री पार्श्वनाथ स्वामी का सेवक धरणेन्द्र हूँ। तुम्हारे ध्यान से खिंचकर मैं यहां तुम्हारी परीक्षा लेने आया था; पर तुम ध्यान से विचलित नहीं हुए। इसलिए हे पुरुषोत्तम! अब तुम मेरे साथ पाताल-लोक में चलो। वहां मैं तुम्हें पुण्य का फल बतलाऊँगा। इसके बाद मैं धरणेन्द्र के साथ ही पाताल-लोक में गया। वहां[1] मैंने सर्वत्र सोने और रत्नों के चबूतरे देखे। एक जगह साक्षात् धर्मराज बैठे

1. धरणेन्द्र ने देव माया से उसे धर्म में विशेष दृढ करने के लिए यह बताया वास्तव में वहाँ कोठरियाँ सात सुख आदि कुछ नहीं होता।

दिखायी दिये। पास ही उनकी जीवदया नाम की पटरानी भी दिखायी दी। मैंने उन्हें प्रणाम किया, तो वे बोले—हे नरेन्द्र! मेरे आशीर्वाद से तुम चिरकाल तक राज्य करोगे। वहां से आगे बढ़ने पर मैंने सात कोठरियाँ देखीं। जब मैंने धरणेन्द्र से पूछा, कि ये क्या है, तब वह बोले, कि इनमें सात प्रकार के सुख रहते हैं। मैंने पूछा—कौन-कौन? तब इंद्र ने कहा—

आरोग्यं प्रथमं द्वितीयकमिदं लक्ष्मी स्तृतीयं यश,
स्तुर्यं स्त्रीपतिचित्तगा च विनयी पुत्रस्तथा पंचमम् ।
षष्ठं भूपति सौम्यदृष्टिरतुला वासोऽभये सप्तमं,
सत्यैतानि सुखानि यस्य भवने धर्मप्रभावः स्फुटम् ।।

अर्थात् - आरोग्य, लक्ष्मी, यश, पतिव्रता स्त्री, विनयी पुत्र, राजा की अनुपम सौम्यदृष्टि और निर्भय स्थिति ये सातों सुख सचमुच धर्म के प्रभाव से ही किसी के घर में होते हैं।

इसके बाद जब मैंने एक-एक कोठरी को अलग-अलग देखना शुरू किया, तब एक में मैंने सब रोगों को हरने वाले छत्र-चँवर युक्त आरोग्य-देव को देखा। दूसरी में मैंने सुवर्ण, रत्न और माणिक्य देखे। तीसरी में एक बड़े भारी सेठ को याचकों को दान देते देखा। चौथी में एक सुंदरी पति की सेवा करती दिखायी दी। पांचवी में विनयी पुत्र और पुत्रवधू से संपन्न गृहस्थ का कुटुंब देखा। छट्ठी में न्यायी और प्रजा-पालक राजा दिखाई दिया। सातवीं में उपसर्ग हर-स्तोत्र का पाठ करता हुआ एक देव देखने में आया। यह सब देखकर मैंने धरणेन्द्र से पूछा--हे इंद्र! यह देव किसलिये इस स्तोत्र का पाठ कर रहा है? इंद्र ने कहा—इस स्तोत्र का पाठ करने से देश, नगर और घर में सब प्रकार के भय से रक्षा होती है और मनोरथ सिद्ध होते हैं। यहीं पर इस स्तव की आम्नाय, प्रभाव और मंत्र की सुचना देनेवाली पुस्तकें रखी है। जहां श्रीधर्म और दया वर्त्तमान है, वहां ये सातों प्रकार के सुख आप से आप प्राप्त हो जाते हैं। यह कह कर इंद्र ने मुझे सब प्रकार की वैक्रियलब्धि बतलायी। वहां से आगे बढ़ने पर मुझे सोने और रत्नों से जड़ा हुआ एक

किला दिखायी दिया। उस किले में सात फाटक थे। पहले फाटक में घुसने पर मैंने चारों ओर कल्पवृक्षों से घिरे हुए सामान्य देवताओं के भवन देखे। दूसरे में ऐसे तोते नजर आये, जिनके पंख सोने के थे। उनमें से एक तो मुझे देखते ही बोल उठा—

समागच्छ समागच्छ प्रियंकर महीपते! ।
पुण्याधिकैरिदं स्थानं प्राप्यते न परैर्नरैः ।।

अर्थात् – हे प्रियंकर राजा, आओ, भले पधारो। यह स्थान सिवा बड़े पुण्यात्मा पुरुषों के और किसी को प्राप्त नहीं होता।

तीसरे फाटक में घुसने पर मैंने नाचते हुए मोर देखे। एक मोर मुझे देखते ही कह उठा—

सफलं जीवितं जात-मद्य राजेन्द्रदर्शनात् ।
धन्यं तन्नगरं नूनं यत्र राजा प्रियंकरः ।।

अर्थात् – आज राजेन्द्र के दर्शनों से मेरा जीवन सफल हो गया। धन्य है वह नगर, जहां प्रियंकर जैसा राजा है।

चौथे फाटक में प्रवेश करने पर मुझे अपने आगे-आगे उछलते-कुदते हुए कस्तूरी-मृग और राजहंस देखने में आये। उन्होंने भी मुझे देखकर प्रणाम किया। पांचवें फाटक में जाने पर स्फटिक मणि के बने हुए क्रीड़ा-सरोवर और मंडप देखने में आये। छट्ठे में इंद्र के सामानिक देवों के महल दिखायी पड़े। सातवे में घुसने पर नाना प्रकार के आश्चर्यमय पदार्थों से भरी और देव कोटि से युक्त धरणेन्द्र की राजसभा दिखायी दी। वहां बैठकर मैंने अनेक मनोहारिणी देवांगनाओं के विविध हाव-भाव युक्त नाच गान का आनंद उपभोग किया। वहां अपने पुण्य का फल दिखलाने के लिए धरणेन्द्र ने मुझे नौ दिनों तक अपने पुत्र के समान मानते हुए रखा। उनकी देवियों ने भी तरह-तरह से मेरी खातिरदारी की और खूब दिव्य पदार्थ खाने को दिये। उस भोजन का मजा मैं इस मुँह से नहीं बतला सकता। इस प्रकार धरणेन्द्र के पुण्यों का फल देखकर मेरे मन में अधिकाधिक पुण्य करने की प्रबल

अभिलाषा उत्पन्न हुई। उस समय मैंने धरणेन्द्र से कहा कि अब आप मुझे घर पहुँचा दे; तो मैं भी वहां पहुंचकर नाना प्रकार के पुण्यानुष्ठान करूंगा। यह सुन धरणेन्द्र ने दिव्य रत्नों से जड़ी और बहुतों को दान देने की शक्ति रखने वाली अपनी अंगूठी उतारकर मुझे दी और कहा—हे राजन्! इस अंगूठी का प्रभाव सुनो। यह अंगूठी यदि पांच मनुष्यों के खाने योग्य भोजनादि पदार्थों पर रख दी जाये, तो इसके प्रभाव से उतने ही में पांच सौ मनुष्य खा सकते हैं। उस अंगूठी का यह प्रभाव श्रवणकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और बड़े आदर के साथ वह अंगूठी अपने हाथ में ली। आज धरणेन्द्र ने मुझे अपने दिव्य अश्व पर बैठाकर देवताओं के सहित यहां तक आकर मुझे घर पहुंचा दिया। परंतु मंत्री! तुम यह तो बतलाओ कि तुमने कैसे जाना कि मैं आज यहां आऊंगा?

यह सुन मंत्री ने मंदिर के अधिष्ठायक देवता की कही हुई बातें कह सुनायी। यह सुन प्रसन्न होकर राजा ने कहा—मंत्री! धरणेन्द्र ने पुण्य के प्रभाव से प्राप्त हुई अपनी जो स्थिति और समृद्धि मुझे दिखलायी, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। सच है, देवलोक में देवताओं को जो सुख प्राप्त होते हैं, उनका वर्णन मनुष्य एक जीभ से तो क्या करेगा, यदि उसे जिह्वाएँ मिल जायें और वह सौ वर्ष तक वर्णन करता रहे, तो भी पूरा न पड़े! इसलिए मंत्री! मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ, कि आज से तुम भी केवल पुण्य के ही काम किया करो।

मंत्री ने कहा—हे राजन्! न्यायी राजा तो नित्य ही पुण्य अर्जन करते रहते हैं। कहा है, कि-

न्याय, दर्शन, धर्म, तीर्थस्थान और प्रजा की सुख-संपत्ति जिसके द्वारा वृद्धि पाती है, उस राजा की सदा जय होती है। प्रजा की रक्षा करनेवाले राजा को प्रजा के किये हुए धर्म और पुण्य का छट्ठा भाग मिलता है और जो रक्षा नहीं करता, उसे प्रजा के पापों में से हिस्सा लेना पड़ता है।

इसके बाद राजा जिन-मंदिर आदि धर्म-क्षेत्रों में बहुत धन व्यय करने लगे। कहा जाता है, कि-

जिनमंदिर में, जिनबिंब में, पुस्तक लिखवाने में और चतुर्विधि

संघ की भक्ति में जो धन लगाता है, वही इस संसार में सच्चा पुण्यात्मा है। इसके सिवा वे धरणेन्द्र की दी हुई अंगूठी के प्रभाव से हर महीने पाक्षिक पारणा के दिन स्वामी वात्सल्य भी करने लगे। इस प्रकार उन्होंने बहुत वर्षोंतक धर्म-कार्यों का अनुष्ठान किया।

एक दिन वे गुरु की वंदना करने के लिए पारणा के दिन उपाश्रय में आये। वहां जिनधर्म से वासित देहवाले, श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का वहन करने वाले, श्रावक के इक्कीस गुणों से विभूषित, बारहों व्रत धारण करने वाले एक श्रावक को उन्होंने गुरु की चरण-वंदना करते देखा। ऐसे गुणवान श्रावक को देखकर राजा ने उसे प्रणाम किया और अपने घर भोजन करने के लिए बुलाया। उसने भी राजा का विशेष आग्रह देखकर उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। इसके बाद गुरु महाराज ने राजा से कहा—हे राजन्! आज इस श्राद्धवर्य का अट्ठम-तीन उपवास का पारणा है। इसलिए इसे सबसे पहले भोजन कराना। राजा ने स्वीकार कर लिया।

इसके बाद वह जिन पूजा आदि नित्य के काम पूरे करने के पश्चात् राजा के घर भोजन करने के लिए आया। राजा ने उसका बड़े आदर से स्वागत किया और उसे सुंदर आसन पर बैठाकर उसके सामने सोने की थाली में नाना प्रकार के दिव्य पकवान्न परोसवाये। उसने पच्चक्खाण पार कर भोजन करना शुरू किया। इतने में राजा के द्वारा निमंत्रित पांच सौ और सेठ-साहूकार भोजन करने के लिए आये। इसी समय एक विचित्र घटना हुई। उस श्रावक ने ज्योंही पारणा समाप्त किया, त्योंही धरणेन्द्र की दी हुई महा प्रभाववाली अंगूठी भोजन की थाली से उड़कर राजा की ऊंगली में आपसे आप चली आयी। यह विचित्र हाल देख राजा ने सोचा—आज यह कैसा विचित्र मामला है! क्या अधिष्ठायक देवता कुपित हो गये? अथवा मुझे कोई अनास्थादोष लग गया? या मेरा पुण्यक्षय हो गया? आज देव का कथन असत्य क्यों कर हुआ? अब मैं अपना बड़प्पन कैसे बनाये रह सकूंगा? इन आये हुए पांच सौ सेठ-साहूकारों को कैसे खिलाऊंगा?

राजा यही सब सात-पांच सोच रहे थे। इतने में आकाशवाणी

हुई कि—राजन्! तुम मन में तनिक भी चिंता न लाओ। देवताकी बात कभी मिथ्या नहीं हो सकती; परंतु बात यह है, कि इस एक ही श्रावक को भोजन करने से तुम्हें पांच सौ श्रावकों को भोजन कराने का फल मिल गया है; क्योंकि यह अकेला ही सबसे पुण्य में बढ़ा चढ़ा और कालांतर में मोक्ष की पदवी पाने वाला है। इसीसे आज यह अंगूठी तुम्हें पांच सौ श्रावकों को भोजन कराने का पुण्य-फल देकर तुम्हारी अंगुली में चली आयी है। तुम गुणी हो, इसलिए तुमने गुणवान श्रावक को पहचान कर भोजन कराया है। ठीक है, गुणहीन गुणी का गुण नहीं जानता और गुणी गुणी को देखकर डाह से जलता है। ऐसी अवस्था में गुणी होकर दूसरे के गुणों पर रीझने वाले पुरुष संसार में विरले ही होते हैं।

इतने में रसोइयोंने आकर राजा से कहा—भोजन के पात्र तो एकबारगी खाली हो रहे हैं। अब इन आये हुए ५०० श्रावकों को कहाँ से खिलाया जाये?

इतने में उसी आकाश-स्थित देव ने कहा—हे राजन्! इसकी कोई चिंता न करो। तुम खुद जाकर देखो, मैंने तमाम पात्र भोजन के पदार्थों से भर दिये हैं। अब हजारों क्या लाखों मनुष्यों को भी खिलाओ, तो भी भंडार खाली न होगा।

यह सुन राजा बड़े प्रसन्न हुए और ज्योंही आकर रसोई के पात्रों को देखा, त्योंही वे सब भोजन के नाना पदार्थों से भरे नजर आये। यह देख बड़े आनंद से राजा ने उन आये हुए पांच सौ श्रावकों को भोजन कराया। सब लोग मौज से खा पीकर अपने-अपने घर चले गये। इसके बाद राजा ने सारे नगर के लोगों को बुलाकर भोजन कराया। यह देख सब लोग आश्चर्य में पड़कर सोचने लगे—रसोई बनायी भी नहीं गयी और राजा ने सारे नगर को बुलाकर खिला दिया, तो क्या राजा को किसी देवता की सहायता है? या इसे सुवर्ण-पुरुष की प्राप्ति हुई है?

इस प्रकार शंका में पड़कर सब लोग एक दूसरे से पूछने लगे। बात राजा के भी कान में पड़ गयी। उन्होंने सब सुनकर कहा—भाई! यह सब धर्म का प्रभाव है। यह कह उन्होंने सब को धरणेन्द्र की अंगूठी

का हाल कह सुनाया। इसी प्रकार राजा प्रियंकर निरंतर नाना प्रकार के धर्म-कार्य करते हुए साधर्मी वात्सल्य करने लगे।

थोड़े दिन बाद अपने माता-पिता की वृद्धावस्था देख प्रियंकर ने आप श्री संघ के साथ शत्रुंजय तीर्थ में जाकर उनको यात्रा करायी। कहा है, कि शत्रुंजय, सम्यक्त्व, सिद्धांत, संघभक्ति, संतोष, सामायिक और श्रद्धा ये सातों दुर्लभ पदार्थ है।

शत्रुंजय तीर्थ में पहुंचकर उन्होंने साधर्मिवात्सल्य, संघपूजा, दीनोद्धार और दानशाला आदि अनेक प्रकार के पुण्य के कार्य किये। कहते हैं कि, विवाह में, तीर्थ में और मंदिर की प्रतिष्ठा के समय साधर्मिवात्सल्य अवश्य ही करना चाहिए। विशेषतः सुपात्र को दान देना चाहिए।

एक दिन भाव पूर्वक श्री शत्रुंजय तीर्थ पर श्री ऋषभदेवस्वामी की पूजा कर पर्वत पर से उतरते समय राजा प्रियंकर के पिता सेठ पासदत्त ने नीचे आकर तलेटी पर आराधना-पूर्वक मृत्यु पाकर स्वर्गलाभ किया। राजा ने उनकी यादगार के लिए शत्रुंजय के नीचे एक मंदिर बनवा दिया। इसके बाद राजा स्थान-स्थान पर खूब उत्सव करते हुए संघ सहित अपनी राजधानी में चले आये। वहां आकर श्रीमद् युगादिदेव की पादुका को सोने से मढ़वा कर प्रतिदिन उसे पूजाना आरंभ किया।

धीरे-धीरे राजा प्रियंकर भी बूढ़े हुए। उन्होंने अपने शेष जीवन को केवलमात्र धर्मानुष्ठान में लगाने के विचार से अपने पुत्र को बुलाकर कहा-हे पुत्र देखो—

बलवान पर कोप, प्रियतम पर अभिमान, संग्राम में भय, बंधुओं से विरोध, दुर्जनों से सरलता, सज्जन के संग शठता, धर्म में संशय, गुरुजन का अपमान, लोक में मिथ्या विवाद, ज्ञाति जनों से गर्व, दीनों की अवहेलना और नीच जनों पर प्रीति कभी न करना।

इस प्रकार अपने पुत्र जयंकर को शिक्षा देकर वे राज्यकार्य को त्यागकर धर्म-साधना में लीन हो गये। उस दिन से वे अष्टमी और चौदस को पौषध करते और सुपात्रों को खूब दान देते थे। कहा भी है, कि-

अभयदान, सुपात्रदान अनुकंपादान उचित दान और कीर्त्तिदान इन पांच प्रकार के दानों में प्रथम के दोनों मोक्ष तथा शेष तीनों भोग आदि देते हैं।

इस प्रकार के धर्मकार्य करते हुए अंत समय में आराधना पूर्वक अनशन कर मृत्यु को प्राप्त होकर राजा प्रियंकर सौधर्मलोक में जाकर देव हुए। वहां से आकर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य के घर जन्म ग्रहण कर, चारित्र ग्रहण कर निरतिचारता का पालन करते हुए वे मोक्ष लाभ करेंगे।

इस तरह जो लोग उपसर्ग-हर स्तोत्र को रात-दिन याद करते रहते हैं, वे पद-पद पर राजा प्रियंकर की ही भाँति सुख-संपत्ति लाभ करते हैं।

(हे अपना दिल तो आवारा .....)

हे प्रभात में जपना नाम, विघन सब है जाएँगे ।।

जन्म महोत्सव भारी, नगरी है शणगारी, खुश प्रजा सारी
वाराणसी पुरी, रखा पारस प्रभु का नाम → विघन सब ...1

प्रभावती काजे, यवन राज गाजे, पार्श्व कुमार राजे
किया वश पल में, विवाह उत्सव प्रभावती संग → विघन सब ...2

सेवक संग पहुँचे बाग, जली देखी है आग, बीच रहा है नाग
सुनाया नवकार, बना है देव धरणेन्द्र → विघन सब ...3

रूप करे विकराली, वृष्टि करे मेघमाली, चाल एक भी न चाली
ध्यान में लीन प्रभु, शरण में आ क्षमा याची → विघन सब ...4

रूप करे विकराली, वृष्टि करे मेघमाली, चाल एक भी न चाली
ध्यान में लीन प्रभु, शरण में आ क्षमा याची → विघन सब ...4

केवल ज्ञान पाया, समवसरण रचाया, चार रूप कराया
देशना भव तारी, वाणी सुन हरखे मन →विघन सब ...5

मासक्षमणे ध्यान, सम्मेत शिखर निर्वाण, छासठ साले उपधान
गाया करे गुण गान, संघवी है आलासन→ विघन सब ...6

सूरि राजेन्द्र उपकारी, तीर्थेन्द्र नगर मझारी, देखी मोहे नर – नारी
जयानंद जाए वारी, मुक्ति है वन्दना करो → विघन सब ...7

सभी पापों की जननी ममता।

ममता का पाप सब से अधिक।

ममता रहित आत्मा सुंदर आत्मा।

ममता करनी है तो करो सुदेव, सुगुरु, सुधर्म की

ममता के कारण पाप अगले भव में भी आता है।

ममता का नाश प्रभु भक्ति से।

मन ही ममता को पाल पोस कर बड़ी करता है।

मन को समता से जोड़ो, ममता से मुख मोडो।

मरना जब निश्चित है तो मृत्यु को महोत्सव बना दो।

मरते समय वहीं रोता है

जिस के पास ले जाने को कुछ नहीं है।

मान मानवी की गुण समृद्धी का नाश करता है।

मान आत्मा को नीच कोम में भेज देता है।

मान हार जाता है नम्रता के सामने।

माया मिथ्यात्व को निमंत्रण दे देती है।

माया मान से भी निकृष्टतम है।

***

पधारिये।

।। श्री ।।

श्री चमत्कारी पार्श्वनाथाय नमः ।।

अवश्य पधारिये।

श्री राजेंद्र - धनचन्द्र - भूपेन्द्र - यतीन्द्र - विद्याचन्द्रसूरि सद्गुरुभ्यो नमः

श्री राज-धन-तीर्थेन्द्र-लब्धिचन्द्रसूरि सद्गुरुभ्यो नमः

नमामि गुरु रामचन्द्रम् ।।

भव्यातिभव्य

उपधान तपाराधना

परम पावन शुभ निश्रा

प.पू. मुनिराज श्री जयानंद विजयजी म.सा.

गुरु भगवंतो का भव्य प्रवेश

संवत् 2066 मगसर वद ७ सोमवार ता. 9.11.2009

सुबह 7 बजे

प्रथम प्रवेश

संवत् 2066 मगसर वद १०

बुधवार ता. 11.11.2009

द्वितीय प्रवेश

संवत् 2066 मगसर वद १२

शुक्रवार ता. 13.11.2009

माला का वरघोडा

संवत् 2066 पोष सुद १०

रविवार ता. 27.12.2009

मोक्ष माला

संवत् 2066 पोष सुद ११

सोमवार ता. 28.12.2009

आप श्री सकल संघ से सादर सविनय भरी विनंती है कि आप सपरिवार पधारकर उपधान महातपाराधना में आराधक बनकर हमारे परिवार के उत्साह में अभिवृद्धि करावें।

विशेष सभी उपधान वालों को प्राथमिकता दी जायगी।

नेतीजी परिवार

ओटमल धर्मचन्दजी संघवी
किशोरकुमार मोडमलजी संघवी
सुरेशकुमार मनोरमलजी संघवी
रमेशकुमार बाबुलालजी संघवी

शा. विजयराज गुणेशमलजी संघवी

भाणेज भाणेजी
धनराज, सुमेरमल, महावीर, ललीत, भरत
विक्रम, एवं वीणा देवी

दोइता - दोइती
रेखा, सवीता, चेतन, विकेश, किरण
मिथुन, अकिंत, विकी, खुश्बू, वरूण

नन्हे मुन्हे बच्चो का प्यार
उतम,जीवन, किर्ती, संजु, आशीष,हितेश, बन्टी, अक्षय,
जतीन, विपुल एवं चिन्की संघवी केणी कुमारी संघवी

ससुराल पक्ष
शा. धीरजकुमार गोतमचन्द रीकबचन्दजी सोलंकी, केशवणा
शा. दिलीपकुमार रमेश-राजेश भंवरलालजी सोलंकी, केशवणा

ACHARYA SHRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR

हम सभी आपका स्वागत करते हैं।

कमलाबाई- भंवरलालजी भन्साली, उम्मेदाबाद

रंगीलाबाई- डुंगरमलजी बंदामुथा, उम्मेदाबाद

पुष्पाबाई- पृथ्वीराजजी गॉधीमुथा, सायला

जसीयाबाई- प्रकाशकुमारजी संकलेचा, मेंगलवा

मंजुबाई- महेन्द्रकुमारजी सुजाणी, उम्मेदाबाद

नीतूबाई- ललीतकुमारजी ओबाणी, पोसाणा

पिंकीबाई- विनोदकुमारजी सुजाणी, उम्मेदाबाद

रिंकुबाई- डायालालजी संकलेचा मेंगलवा

हमारा परिवार आपका हार्दिक स्वागत करता है।

श्रीमती दरीयादेवी- मांगीलाल संघवी

श्रीमती सीतादेवी- नेमीचन्द संघवी

श्रीमती ललीतादेवी- राजेशकुमार संघवी

श्रीमती संगीतादेवी- सुरेशकुमार संघवी

श्रीमती रेखादेवी- महावीरकुमार संघवी

श्रीमती सारीकादेवी- ललीतकुमार संघवी

श्रीमती अंजुदेवी- निलेशकुमार संघवी

स्व. पिता श्री हरकचन्दजी संघवी

स्व. श्रीमती हुलीदेवी संघवी

अन्त में पुनः आप श्री सकल संघ से सादर सविनय आग्रह भरी विनंती है कि आप सपरिवार पधारकर हमारे परिवार के उत्साह में अभिवृद्धि करावें।

निवेदक

शा. भंवरलाल मांगीलाल हरकचन्दजी

श्री श्री श्रीमाल संघवी आलासण

जिला-जालोर (राज.)

फोन नं. 02973 - 260173

फर्म

जैन बटन हाउस

76, लक्ष्मी नगर

तिरपुर (तमिलनाडू)

जालोर से 25

फर्म

नेश इलेक्ट्रीकल्स

राजा बिल्डींग

तिरूनलवेली, जंक्शन

(तमिलनाडू)

नोट :- बाकरा रोड आने के लिए जालोर से 25 k.m. सायला से 15 k.m. बागरा से 15 k.m. व भीनमाल से 40 k.m. दूरी पर तीर्थ स्थित हैं।

प्रकाश, जालोर © 222506